आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष : 23 | जुलाई-अगस्त | अंक : 7-8

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

नम्र निवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार–८४१३०१

दूरभाष : ०६१५२-२२०७३८

श्रीरामकृष्ण देव के सोलह संन्यासी शिष्यों में मात्र एक ही बंगभूमि के बाहर के थे ओर उन्हें अपनी माटी में जन्म देने का श्रेय छपरा को प्राप्त हुआ। स्वामी अद्भुतानन्द नाम से विख्यात ये संन्यासी लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं। इनके माता-पिता समाज के अत्यंत पिछड़े वर्ग के थे। शैशवावस्था में ही माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण उन्हें बाल-श्रमिक के रूप में अपने चाचा के साथ कोलकाता जाना पड़ा।

दैवी कृपा से किशोर लाटू अभूतपूर्व आध्यात्मिक साधना के शिखर-पुरुष, सर्वधर्म समन्वय की प्रतिमूर्ति युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आए। इन दोनों का मिलन भारत ही नहीं, विश्व के आध्यात्मिक जगत् के लिए एक ऐतिहासिक स्वर्णिम संगम था। यह केवल एक परम गुरु से एक निष्ठावान शिष्य का मिलन नहीं, वरन् भारत की एक युग-परिवर्तनकारी घटना थी, मानो भावी भारत की जाति-भेद विहीन सामाजिक संरचना का अद्भुत संकेत था।

श्रीरामकृष्ण के निदेशन में गहन आध्यात्मिक साधना कर इस निपट ग्रामीण, निरक्षर युवक ने समाधि के उच्चतम सोपान पर ब्रह्मोपलब्धि कर आध्यात्मिक जगत में एक अद्वितीय, अद्भृत उदाहरण प्रस्तुत किया। लाटू महाराज की इस अनोखी उपलब्धि को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने ही उनका नाम स्वामी अद्भुतानन्द रखा।

बिहार की मिट्टी धन्य है जिससे भगवान बुद्ध, महावीर जैन, सीता माई आदि के नाम जुड़े हैं। यह भूमि एक बार फिर से लाटू महाराज सरीखे सन्त को जन्म देकर धन्य हो गई है। आज स्वामी अद्भुतानन्द के जीवनचरित पर बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्यान्य देशी-विदेशी भाषाओं में अनेक ग्रन्थों एवं लेखों का प्रकाशन हो रहा है। आध्यात्मिक जगत् में छपरा जिले को एक विशिष्ट गरिमा प्राप्त हुई है एवं वह दिन दूर नहीं जब छपरा एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल में परिवर्तित हो जाएगा।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ ने रामनवमी २००३ को छपरा स्थित रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम का रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में अधिग्रहण किया। आशा की जाती है कि रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा अपने पूर्ण सामर्थ्य से लाटू महाराज की स्मृति अक्षुण्ण रखने के साथ-साथ समाज-कल्याण के कार्यक्रमों में स्वयं को समर्पित कर देगा।

हमारी तात्कालिक आवश्यकताएँ–

१. संत-निवास हेतु-------१० लाख रुपये

२. दरिद्रतम छात्रों के अध्यापनार्थ एक शेड हेतु ३ लाख रुपये

३. चिकित्सालय के लिए दवा एवं उपकरणों के हेतु-------१० लाख रुपये

४. अतिथि निवास के लिए--------३ लाख रुपये।

कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए हमें धन-बल एवं जन-बल की आवश्यकता है, जिसका अभी नितान्त अभाव है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आप हमारे कार्यों में सहायता प्रदान करने हेतु सहानुभूतिपूर्वक आगे आएँ। इस आश्रम को दिये गये दान आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं। चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार' के नाम से ऊपर दिए गए पते पर भेजें।

भवदीय

स्वामी मुनीश्वरानन्द

सचिव

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

जुलाई-अगस्त-२००४

सम्पादक
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक
ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २३
अंक ७-८

वार्षिक ६०/- एक प्रति १०/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(20 वर्षों के लिए) ७००/-
संरक्षक-योजना
न्यूनतम दान-१०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका
स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

विवेक शिखा

के आजीवन सदस्य

२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०४. श्री ए. डी. भट्टाचार्य-भद्रकाली (पं.बं.)
२०५. अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा सारण (बिहार)
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी, काराधीक्षक जमशेदपुर (झारखण्ड)
२०७. सचिव, रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर (गुजरात)
२०८. सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची (बिहार)
२०९. श्रीमती शुभा कामत-मुम्बई (महाराष्ट्र)
२१०. श्री बी. एल. अग्रवाल, नगाँव (आसाम)
२११. श्री कैलास खेतान, नगाँव (आसाम)
२१२. श्रीमती शोभा मनोत, कोलकाता
२१३. श्री संजय जिंतुरकर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
२१४. श्री कृष्ण कुमार नेवटिया, कोलकाता
२१५. श्री नन्द लाल टांटिया, उत्तर काशी
२१६. श्रीमती मंजु गुप्ता, वाराणसी
२१७. श्रीराम कुमार शुक्ला, बाराबंकी
२१८. डॉ० दिनेशचन्द्र पाठक, चम्पावत
२१९. श्रीमती वसन्ती शर्मा, ऊधम सिंह नगर
२२०. श्रीमती विद्या मुरारी, पिथौरागढ़
२२१. श्रीमती गीता मर्थला, नैनीताल
२२२. रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर

विवेक शिखा के संरक्षक

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर **'विवेक शिखा'** के 'स्थायी कोष' की योजना बनायी गयी है । जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे । विवेक शिखा में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे आजीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे । विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इसके संरक्षक हो सकते हैं । यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है ।

व्यवस्थापक

संरक्षक सूची

१. श्रीमती कमला घोष – इलाहाबाद –३,०००/-
२. श्री नन्दलाल टाँटिया – कोलकाता –१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा – जम्मूतवी –१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल – कोलकाता –१,०००/-
५. डॉ. सुजाता अग्रवाल – कर्नाटक –१,०००/-
६. श्रीमती सुभद्रा हाकसर – कोलकाता –५,०००/-
७. स्वामी प्रत्यगानन्द – चेन्नई –१,०००/-
८. श्रीमती रंजना प्रसाद – रायपुर –१,०००/-
९. श्री जी.पी.एस. धिमीरे – काठमांडू –१,०००/-
१०. डॉ० निवेदिता बक्शी – कुर्ला पं०मु० –१,०००/-
११. श्री उमापद चौधरी – देवघर –१,०००/-
१२. श्री शत्रुधन शर्मा – फतेहबाद –१,०००/-
१३. श्री प्रभुनाथ सिंह – माने, बिहार –१,०००/-
१४. श्री रामकृष्ण वर्मा – कोटा राजस्थान –१,०००/-
१५. श्री कीर्त्यानन्द झा – पटना, बिहार –१,०००/-
१६. श्री रामअवतार चौधरी – छपरा, बिहार –१,०००/-
१७. डॉ. निधि श्रीवास्तव – जमशेदपुर –१,०००/-
१८. श्री सतीश कुमार वंशल – दिल्ली –१,०००/-
१९. श्री उदयवीर शर्मा – खंडवाया उ.प्र. –१,०००/-
२०. श्री आर. बी. देशमुख – पुणे –१,००१/-
२१. कुमारी उषा हेगड़े – पुणे –१,०००/-
२२. श्री राजकेश्वर राम – पटना, बिहार –१,०००/-
२३. डॉ. (श्रीमती) नीलिमा सरकार – कोलकाता –१,०००/-
२४ श्री एन.के. वर्मा – मुम्बई –१,०००/-
२५. श्री अशोक राव – छिंदवारा –१,१००
२६. श्री मोती लाल खेतान – पटना –१,०००/-
२७. डॉ. प्रदीप कुमार बक्शी – कोलकाता –२,०००/-
२८. डॉ. शरत् मेमन – मुम्बई –१,०००/-
२९. श्री रामकृष्ण आश्रम – मैसूर –१,०००/-
३०. श्रीमती छविराज सिंह – गाजीपुर –१,०००/-
३१. श्री पंकज कुमार – अ० प्रदेश –१,०००/-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष–२३ जुलाई-अगस्त–२००४ अंक–७-८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ॥

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

१. जैसी जिसकी भावना होगी वैसा ही उसे लाभ होगा । भगवान् मानो कल्पवृक्ष हैं । उनसे जो, जो माँगता है, उसे वही प्राप्त होता है । गरीब का लड़का पढ़-लिखकर तथा कड़ी मेहनत कर हाईकोर्ट का जज बन जाता है और मन ही मन सोचता है, 'अब मजे में हूँ । मैं उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आ पहुँचा हूँ । अब मुझे बहुत आनन्द है ।' भगवान भी तब कहते हैं, 'तुम मजे में ही रहो ।' किन्तु जब वह हाईकोर्ट का जज सेवानिवृत्त होकर पेन्शन लेते हुए अपने विगत जीवन की ओर देखता है तो उसे लगता है कि उसने अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गुजार दिया । तब वह कहता है, 'हाय, इस जीवन में मैंने कौन-सा उल्लेखनीय काम किया ?' भगवान् भी तब कहते हैं, 'ठीक ही तो, तुमने किया ही क्या !'

२. केवल धनसंचय कर कोई धनी नहीं होता । ठीक-ठीक धनी का लक्षण यह है कि उसके घर में हर एक कमरे में दीया जलता है । गरीब आदमी इतना तेल खर्च नहीं कर पाता, इसलिए वह इतने दीयों का प्रबन्ध नहीं कर सकता है । देह-मन्दिर को भी अँधेरे में नहीं रखना चाहिए, उसमें ज्ञान का दीप जलाना चाहिए ।' ज्ञान-प्रदीप जला निज घर में, ब्रह्ममयी का मुख देखो न । हर एक व्यक्ति ज्ञान-लाभ कर सकता है । हर एक जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग है । हर एक घर में गैस की नली होती है जिसके द्वारा गैस कम्पनी से गैस आ सकता है । बस, योग्य अधिकारी को अर्जी भेजो, गैस भिजवाने का प्रबन्ध हो जाएगा और तुम्हारे घर में गैस बत्ती जलने लग जाएगी ।

३. संसारासक्त व्यक्ति किस प्रकार का होता है ? वह मानो हण्डी में पाले हुए नेवले की तरह होता है । नेवला पालनेवाले नेवले के लिए दीवार पर एक हण्डी या गमला लटका देते हैं । नेवला हण्डी में से निकलकर दीवार के नीचे उतरकर इधर-उधर घूमता है पर जब आहट पाकर चौंक जाता है तो झट ऊपर चढ़कर हण्डी में छिप जाता है । परन्तु वह हण्डी में अधिक समय तक नहीं रह पाता । उसके गले की रस्सी के दूसरे छोर पर जो ईंट बँधी होती है, उसका भार उसे नीचे खींच लाता हैं । संसारी जीव का भी यही हाल है । संसार के दुःख कष्टों से पीड़ित हो बीच-बीच में वह मजबूर हो संसार के ऊर्ध्व उठकर भगवान् का आश्रय ग्रहण करता है, परन्तु वह उस अवस्था में अधिक समय के लिए नहीं रह पाता, संसाररूपी ईंट के बोझ से वह फिर नीचे उतर आकर संसार में मग्न हो जाता है ।

४. गाय का दूध वास्तव में उसके समूचे शरीर में व्याप्त है, पर उसके कान या सींगों को दबाने से तुम्हें दूध नहीं मिलेगा, दूध के लिए तो थनों को ही निचोड़ना होगा । इसी भाँति, ईश्वर तो पूरे ब्रह्मण्ड में व्याप्त हैं पर तुम उन्हें हर जगह नहीं देख पाओगे । पावन तीर्थों और मन्दिरों में, जहाँ युग-युग के साधक-भक्तों के साधन-भजन, पूजा-उपासना आदि के फलस्वरूप भक्तिभाव घनीभूत रूप में ओत-प्रोत है, भगवान का विशेष प्रकाश विद्यमान है ।

५. जैसे वकील को देखने से मामले-मुकदमे और कचहरी की ही बातें मन में आती हैं, वैसे ही साधु या भक्त को देखने से ईश्वर और धर्म-सम्बन्धी बातों का ही स्मरण होता है । ☐

मातृ-वन्दना

–विदेह

–१–

(वागेश्री रूपक)

रख ले मातु अपने पास,
अब मिटा दे मम हृदय से, चिर दिनों की प्यास ॥

है नहीं सुख-शान्ति जग में,
फिर कभी भटकूँ न इसमें,
तू स्वयं मुझको उठाकर, दूर कर दुख-त्रास ॥

मोह माया का अँधेरा,
कौन जाने कब सवेरा,
प्रकट कर निज रूप आभा, हो तमस का नाश ॥

हों विमल मम प्राण-अन्तर,
वास कर उर में निरन्तर,
निरख आस्वादन करूँ मैं,
तेरी मधुमय हास ॥

(२)

(यमन-त्रिताल)

सुन ले पुकार अबकी बार,
डूब रहा हूँ भवसागर में,
जननी अब तो मुझको उबार ॥

बीच भँवर में मेरी नैया,
ना संगी ना काई खिवैया,
दिशाहीन मैं बहा जा रहा,
निज करुणा से कर दे पार ॥

भटक रहा हूँ जनम जनम से,
सुख दुख पाते भाग्य-करम से,
मिथ्या भव का छोड़ सभी कुछ,
आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार ॥

सम्पादकीय सम्बोधन

गुरु कुम्हार सिख कुंभ है

मेरे आत्म स्वरूप मित्रो,

आषाढ़ की पूर्णिमा । गुरु पूर्णिमा । यूँ तो हर पूर्णिमा अपने आप में आह्लादक होती है, परन्तु भारत में दो पूर्णिमाओं का विशेष महत्त्व है–बैशाख की पूर्णिमा यानी बुद्ध पूर्णिमा और आषाढ़ की पूर्णिमा–गुरु पूर्णिमा । बैशाख में सूर्य का ताप अपने शीर्ष पर होता है । धरती ताप-तप्त होकर छटपटा उठती है । पेड़ों के पत्ते झुलस जाते हैं । प्यास से चोंच फैलाये पंछी अपने पंख समेटे किसी छाँह की वाट जोहते रहते हैं । और ऐसी ही किसी बैशाख के ताप-तप्त महीने में संसार के त्रिताप-दग्ध मानव प्राणी के लिए शान्ति, प्रेम, करुणा और अहिंसा की शीतल मंद और प्राणदायी बयार लेकर अवतरित होते हैं बुद्ध । विश्व को मानवता का हिय-हारी संदेश प्रदान करते हैं भगवान बुद्ध । परिपूर्णता, अमरता और निर्वाण की निरंजना-वारिधारा प्रवाहित करते हैं भगवान बुद्ध । बैशाख की पूर्णिमा तप, त्याग, असीम करुणा और निस्सीम प्रेम की पूर्णिमा है ।

और आषाढ़ की पूर्णिमा ! मैं इसकी कल्पना से ही रोमांचित हो उठता हूँ । बैशाख और जेठ में धरती तप जाती है । उसमें दरारें पड़ जाती हैं । प्यास इतनी गहरी कि मानो पृथ्वी की छाती फट जाती है । और तभी आती है आषाढ़ की पूर्णिमा । आकाश में काली-काली घटाएँ पूनम की चाँदनी से घुल मिलकर रेशमी हो जाती हैं । धुनी हुई रूई की भाँति सारे आकाश को आवृत कर धरती का ताप हर लेती हैं । फिर शीतल मंद जल-फुहार से पृथ्वी की प्यास हरती हैं । और घटाएँ छँट जाती हैं । एक निरभ्र चाँदनी से वसुन्धरा सँवर उठती है । पेड़-पौधे हरे-भरे हो उठते हैं । पशु-पक्षी एक सुखद शान्ति, एक आत्म-तृप्ति, एक मनोमुग्धता से भर उठते हैं । धरती गर्भ धारण करती है । उसमें बीज डाले जाते हैं । किसानों के द्वारा एक नया जीवन अंकुरित होने की रात है आषाढ़ की पूर्णिमा । और आप कल्पना कीजिए, आप किसी शैल शिखर पर, किसी नदी के तीर पर, किसी वृक्ष के नीचे किसी खुले मैदान में बैठे हैं । आषाढ़ की पूर्णिमा है । रसभीनी फुहार बरस रही है । आप भींग रहे हैं । धीरे-धीरे आप बाह्य चेतना खो रहे हैं । देह-चेतना खो रहे हैं । काल-चेतना खो रहे हैं । आत्मसंस्थ हो रहे हैं । और हम एक अनिर्वचनीय शीतल चन्द्रिका के आलोक-लोक में खो जाते हैं । इसी से मैं अक्सर कहता हूँ आषाढ़ की पूर्णिमा धारणा की पूर्णिमा है । आषाढ़ की पूर्णिमा ध्यान की पूर्णिमा है । आषाढ़ की पूर्णिमा समाधि की पूर्णिमा है । कबीर ने कितना ठीक कहा है–

गगन गरजि बरिसै अभी, बादल गहिर गंभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीजै दास कबीर ॥

यानी चिदाकाश में ध्यान के घने बादल घिर आये हैं, जोरों का अनहद नाद गूँज रहा है, चारों ओर परम ज्योति की बिजली दमक रही है और साधक कबीर भावस्थ होकर आत्म-संस्थ होकर आनन्द की अमृत धारा में भींग रहा है ।

आषाढ़ की पूर्णिमा हमें जगत-ज्वाला से मुक्त कर अखंड आनन्द की अमृत-धारा में भिंगोने की पूर्णिमा है, संसारिक कामनाओं और वासनाओं की मृग-मरीचिका से मुक्त कर एक आत्मोपलब्धता, एक परिपूर्णता, एक अमरता और एक परम तृप्ति तथा धन्यता की त्रिवेणी में डुबोने की पूर्णिमा है ।

आषाढ़ की पूर्णिमा इसीलिए गुरु पूर्णिमा है । इस दिन विश्व के सभी गुरु शिष्यों पर उसी प्रकार अपने असीम अहेतुकी आशीर्वाद की वर्षा करते हैं जिस प्रकार आषाढ़ की घटा बिना भेद-भाव के सब पर जल-वृष्टि कर जन-जन का ताप हरती है । गुरु अपने आशीर्वाद से शिष्यों का ताप ही नहीं हरते बल्कि उसके अज्ञान-अंधकार का हरण कर ज्ञान के पूर्ण प्रकाश से उसे आलोकित भी कर देते हैं । गोस्वामी तुलसीदासजी इसी से गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

महा मोह तम सो सुप्रकासू ।
बड़े भाग उर आवई जासू ॥

गुरु महा मोह रूपी अंधकार में सुन्दर-सुन्दर प्रकाश हैं । जिसके हृदय में यह प्रकाश अवतरित होता है, वह बड़ा भाग्यवान है ।

भगवान वेद व्यास का जन्म भी आषाढ़ की पूर्णिमा को ही हुआ था । उनकी जन्म-तिथि को समस्त गुरुओं का दिवस मानकर भक्तों ने आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाना शुरू कर दिया ।

गुरु किसे कहते हैं ? 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है प्रकाश । इस तरह गुरु उसे कहते हैं जो शिष्यों के जीवन के समस्त तम का हरण कर उसे प्रकाश से भर देते हैं । अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञान।जन शलाकया चक्षुरुन्मीलते येन तस्मै श्री गुरुवे नमः– इसी से कहा गया है ।

ईश्वर ही जगत के गुरु हैं। वे ही जीवों के उद्धार के लिए गुरु रूप में अवतरित होते हैं। गुरु शरीर नहीं, परमात्मा के चिन्मय स्वरूप ही हैं। इसलिए गुरु को मनुष्य मानकर प्रायः हम धोखा खा जाते हैं और सामने उपस्थित परमात्मा को पहचान ही नहीं पाते। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे–'जो गुरु के बारे में मनुष्य-बुद्धि रखता है उसके साधन भजन का क्या फल होगा ? गुरु के बारे में मनुष्य-बोध नहीं रखना चाहिए। इष्ट दर्शन होने के पहले शिष्य को प्रथम गुरु के दर्शन होते हैं। फिर ये गुरु ही शिष्य को इष्टदेव के दर्शन करा देते हैं तथा स्वयं धीरे-धीरे उस इष्टरूप में विलीन हो जाते हैं। तब शिष्य गुरु तथा इष्टदेव को अभिन्न, एकरूप देखता है। इस अवस्था में शिष्य जो वर माँगता है, गुरु उसे वही देते हैं। यहाँ तक कि गुरुदेव उसे सर्वोच्च निर्वाण की अवस्था तक दे सकते हैं। या अगर शिष्य चाहे तो वह उपास्य-उपासकरूपी भाव-सम्बन्ध को बनाए रखकर द्वैत अवस्था में भी रह सकता है। वह जैसा चाहे गुरु उसके लिए वैसा ही कर देते हैं।'' वस्तुतः गुरु और गोविन्द में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है।

फिर भी गुरु जो-सो नहीं हो सकते। आदि शंकराचार्य ने वास्तविक गुरु में जिन गुणों का होना अनिवार्य माना है, वे हैं–**श्रोत्रियो, अवृजिनो, अकामहतः ब्रह्मवित्तमः शान्तः निरन्धन इवानलः**–अर्थात् गुरु को वेदों का निष्णात पण्डित, निष्पाप, निष्काम, ब्रह्मविद तथा बुझी हुई आग की भाँति शान्त होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि गुरु को वेद-शास्त्रों का यथेष्ट ज्ञान होना चाहिए। कहा गया है कि **'विद्या धनम् सर्वधन प्रधानम्'** समस्त धनों से विद्या का धन, ज्ञान का धन श्रेष्ठ है। ज्ञान ही वह सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है जिसकी हमें उपलब्धि करनी चाहिए। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–**'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'** (४.३८) इसलिए गुरु को शास्त्र-ज्ञाता होना चाहिए। उसे निरंजन, निष्पाप होना चाहिए। उसका चरित्र गंगा-सा पावन और हिमालय-सा उज्ज्वल होना चाहिए। उसे काम-रहित होना चाहिए। वह किसी लोभ के वशीभूत हो नहीं, बल्कि शिष्य के सर्वतोभावेन मंगल के लिए शिष्य बनाता है। उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। शिष्य के परमार्थ के लिए ही वह उसे बीज मंत्र दे दीक्षित करता है। फिर उसे ब्रह्मविद होना चाहिए। यदि गुरु स्वयं ब्रह्म का ज्ञाता नहीं है तो वह शिष्य को ब्रह्म-ज्ञान कैसे दे सकता है। जिसने स्वयं वाराणसी की यात्रा नहीं की है वह दूसरों को वाराणसी का सही-सही मार्ग दर्शन कैसे करा सकता है ? जिस मार्ग से गुरु संसार-सिन्धु को पारकर दिव्यलोक का दर्शन कर चुके हैं, वही मार्ग वे अपने शिष्यों को दिखा सकते हैं। तदुपरान्त गुरु को अग्निरहित ईंधन की भाँति परम शान्त होना चाहिए, जैसे अनेक नदियाँ परिपूर्ण और अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में बिना उसमें किसी प्रकार का क्षोभ किये समा जाती हैं वैसे ही शान्त पुरुष में समस्त भोग-वासनाएँ बिना उसे लुब्ध-क्षुब्ध किये उसमें समा जाती है। वही परम शान्त पुरुष है। वही स्थित प्रज्ञ है। वही ब्राह्मी स्थिति में प्रतिष्ठित है। गुरु को ऐसा ही होना चाहिए। ऐसे गुरु ही शिष्य का उद्धार कर सकते हैं। वे सरदी-गरमी, सुख-दुख तथा मानापमान में सदा शान्त रहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द का सच्चे गुरु के सम्बन्ध में यह एक बड़ा ही उत्तम और बोधपूर्ण कथन है–''गुरु मुझे सिखाये और प्रकाश में पहुँचाये, मुझे उस शृंखला की कड़ी बनाये, जिसकी कि वह स्वयं एक कड़ी है। साधारण मनुष्य गुरु बनने का दावा नहीं कर सकता। गुरु ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जिसने जान लिया है, दैवी सत्य को वास्तव में अनुभव कर लिया है, और अपने को आत्मा के रूप में देख लिया है। --- वह शक्ति, जो एक क्षण में जीवन को परिवर्तित कर दे, केवल उन जीवन्त प्रकाशवान आत्माओं से ही प्राप्त हो सकती है, जो समय-समय पर हमारे बीच में प्रकट होती रहती हैं। केवल वे ही गुरु होने के योग्य हैं।'

(वि.सा.उ. पृ०१७८)

जिसप्रकार गुरु होने की कुछ शर्तें होती हैं, उसी प्रकार शिष्य होने की भी कुछ शर्तें हैं। हम में शिष्यत्व की पात्रता होनी चाहिए। शिष्यत्व की क्या शर्तें हैं ?

सबसे पहले शिष्य में अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा-विश्वास होना चाहिए। जदपि आमार गुरु दारुखाना जाय। तदपि आमार गुरु नित्यानन्द राय॥ अर्थात यद्यति मेरा गुरु मद्यपान भी करे तब भी मेरा गुरु नित्यानन्द ही है। ऐसा दृढ़ विश्वास गुरु के प्रति होना चाहिए। फिर शिष्य में मुमुक्षुत्व अर्थात् उसमें इसी जीवन में मुक्त हो जाने की प्रबल आकांक्षा हो। उसे वासनाओं का त्याग करना होगा। और फिर शिष्य में सत्-असत्, नित्य-अनित्य का विवेक हो। वह विनम्र होकर गुरु के पास समित्पाणि होकर जाय और गुरु को दण्डवत हो प्रणाम करे तथा गुरु से तत्वज्ञान की प्राप्ति कर ले।

आप कह सकते हैं, इतनी शर्तें पूरी करने की शक्ति हम साधारण जनों में है कहाँ ? हाँ यह सही है। परन्तु गुरु के पास जाने की तीव्र आकांक्षा तो होनी ही चाहिए। फिर सच्चे गुरु मिल ही जाएँगे। श्रीरामकृष्ण ने कहा है–''यदि तुम्हारे भीतर ईश्वर के प्रति ठीक-ठीक अनुराग हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो तो अवश्य ही वे तुम्हें सद्गुरु से मिला देंगे। साधक को सद्गुरु के लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ती।''

और जब सद्गुरु हमें मिल जाते हैं, तब वे पहले हमें मार ही डालते हैं । गुरु मृत्युः ओषधिः पयः । गुरु मृत्यु है । वह हमारे सारे विकारों को समाप्त कर देता है । मानो मेरे पुराने व्यक्तित्व को समाप्त ही कर देता है । फिर अपने मंत्रोषधि से हमें प्राण-दान देता है और तब अपने स्नेह के दुग्धामृत से हमारे आध्यात्मिक जीवन को पुष्ट और सबल स्वस्थ कर देता है । माहत्मा कबीर ने बड़ा सुन्दर एक दोहा इस संदर्भ में कहा है–

गुरु कुम्हार सिख कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट ।
भीतर भीतर हाथ दे, बाहर-बाहर चोट ।

जैसे कुम्भकार घड़ा बनाते समय घड़े की मिट्टी में पड़े कंकड़ों को बीन-बीन कर निकाल फेंकता है और घड़े के भीतर हाथ का सहारा देते हुए लकड़ी के पिटने से थाप देकर उसे मजबूत बनाता है वैसे ही सद् गुरु भी अपने शिष्य की समस्त विकृतियों को पहले चुन-चुनकर दूर करते हैं और इसके लिए गुरु अपने शिष्य को अनुशासित करते हैं तथा अपने शिष्य पर अपनी करुणा का, स्नेह का, शिष्य-वात्सलता का सहारा देकर उसे सौम्य, शान्त एवं ब्रह्मज्ञ बना देते हैं ।

मेरे प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुदेव ने एक बार अपने एक शिष्य के प्रश्न के उत्तर में कहा था–'गुरु अगर रुष्ट हो जाय, क्रुद्ध हो जाय तो शिष्य को भगवान भी नहीं बचा सकते ।' यह सुनकर शिष्य हतप्रभ और उदास हो गया । लेकिन मेरे परम करुणामय गुरुदेव ने तत्क्षण कहा था– 'लेकिन डरो मत । गुरु अपने शिष्य से कभी रुष्ट नहीं होते । फिर अमंगल का प्रश्न ही कहाँ है ?' इसी से गोस्वामीजी ने हनुमान चालीसा में कहा है–

जय जय जय हनुमान गुसाईं ।
कृपा करहु गुरुदेव की नाईं ।

मेरी प्रार्थना है कि गुरु पूर्णिमा की पावन वेला में हम सब के गुरुदेव अपने शिष्यों का मंगल करे उन्हें बाह्य स्थिति प्रदान करें । जय जय जय श्री गुरु देव महाराज जी की जय ! ❑

सन्त तिरुवल्लुवर

तमिल भाषा की प्राचीनता प्रमाणित करने के लिए संत तिरुवल्लुवर की विश्व विख्यात कृति तिरुवरुक्कुर उल्लेखनीय है । संत तिरुवल्लुवर का जीवनकाल अनिर्णीत है । वह ईसा पूर्व से दो या तीन सदी पूर्व थे । तिरुवल्लुवर चेन्नई के मुरैलापुर (मोरों का शहर) में निवास करते थे । उनकी स्मृति में एक मंदिर है जिसमें प्रारूप शिल्प प्राच्य प्राप्त है । तिरुवल्लुवर नारियल के पत्तों से छाए हुए घर में रहते थे । आसपास समुद्र था । जहाँ बाहर से आने वाले संत और दार्शनिकों से उनकी भेंट होती थी । इनसे विचारों का आदान-प्रदान तिरुवल्लुवर को गहन चिन्तर में प्रवृत्त करता था । वे सद्गृहस्थ थे । उनकी पत्नी पति की मनोवृत्तानुसारिणी थी । पत्याज्ञा पालन को वह कभी असंभव नहीं मानती थीं और इसको चरितार्थ करने में लगी रहती थीं । परिवार में वात्सल्य और प्रेम छलका करता था । पन्नी का नाम वासुंकी था ।

तिरुवल्लुवर की एकमात्र कृति है तिरुवरुक्कुर । यह नीति ग्रंथ है । यह तमिल भाषा का आदिग्रंथ है । भारतीय भाषाओं में यह बहुत प्राचीन है । इसकी विशेषता यह है कि आज भी अपने मूलरूप में उपलब्ध है । इसें अन्तरवेद कहा जाता है । 'कुरुल' का तमिल में अर्थ लघु है । छंद की दृष्टि से कुरुल बहुत छोटा है । इसमें पौने दो चरण होते हैं । यह वामनावतार की तरह अपना विराट स्वरूप अपना अर्थ गंभीरता से प्रकट करता है । गागर में सागर समा सकने की विचित्रता इसमें है । तिरुवक्कुर एक मुक्तक काव्य है । प्रत्येक कुरुल स्वतंत्र है लेकिन संबंध दूसरे से क्रमबद्ध रहता है । इस लोक विख्यात ग्रंथ के तीन भाग हैं–धर्म, अर्थ और काम । धर्म के 38 अर्थ के 70 और काम के 25 अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में दस कुरुल हैं । ग्रंथ में कुरुलों की संख्या 1330 है । एक सामान्य मानव धर्म का संपूर्ण इतिहास इस ग्रंथ में वर्णित है । कथाविहीन होकर भी तिरुवक्कुर की पठनीयता निर्विवाद रूप से देश काल की सीमाओं को पार करती रही है ।

भारतीय भाषाओं में बंगला, हिन्दी, मलयालम, तेलगू, मराठी में तिरुवक्कुर के अनुवाद उपलब्ध हैं । केवल अंग्रेजी में द्वादश अनुवाद हुए हैं । लातीनी, फ्रांसीसी और जर्मन भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्राप्त हैं । हिन्दी में डॉ० एस शंकर राजू नायडू और मु.गो. वेंकट कृष्णन ने तिरुवरुक्कुर के अनुवाद किए हैं । तिरुरूवक्कुर प्रचार संघ प्रकाशन माला ने दोहे जैसे छंद में तिरुवरूक्कुर का पूरा अनुवाद किया है जो उत्तर और दक्षिण को जोड़ने के महतीय प्रमाण हैं ।

डॉ० राष्ट्रबन्धु

शिष्यत्व

–स्वामी विवेकानन्द

(सैन फ्रान्सिस्कों में २९ मार्च १९०० को दिया गया भाषण)

मेरा विषय है 'शिष्यत्व'। मैं नहीं जानता कि मैं जो कहूँगा, वह तुमको कैसा लगेगा। इसको स्वीकार करना तुम्हारे लिए कुछ कठिन होगा–इस देश में गुरुओं और शिष्यों के जो आदर्श हैं, वे हमारे देश के ऐसे आदर्शों से बहुत भिन्न है। मुझे भारत की एक पुरानी लोकोक्ति याद आ रही है: 'गुरु तो लाखों मिलते हैं, पर शिष्य एक भी पाना कठिन है।' बात सही मालूम होती है। आध्यात्मिकता की प्राप्ति में एक महत्त्वपूर्ण वस्तु शिष्य की मनोवृत्ति है, जब अधिकारी योग्य होता है, तो दिव्य प्रकाश का अनायास आविर्भाव होता है।

सत्य को प्राप्त करने के लिए शिष्य के लिए क्या आवश्यक है? महान् ऋषियों ने कहा है कि सत्य प्राप्त करने में निमिष मात्र लगता है–प्रश्न केवल जान लेने भर का है। स्वप्न टूट जाता है, उसमें देर कितनी लगती है? एक सेकण्ड में स्वर्ग का तिरोभाव हो जाता है। जब भ्रम का नाश होता है, तो उसमें कितना समय लगता है? पलक झपकने में जितनी देर लगती है, उतनी। जब मैं सत्य को जानता हूँ, तो इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि असत्य गायब हो जाता है। मैंने रस्सी को साँप समझा था और अब मैं जानता हूँ कि वह रस्सी है। प्रश्न केवल आधे सेकंड का है। और सब कुछ हो जाता है? तू वह है। तू वास्तविकता है। इसे जानने में कितना समय लगता है? यदि हम ईश्वर हैं और सदा से वही हैं, तो इसे न जानना अत्यन्त आश्चर्य की बात है। एकमात्र स्वाभाविकता यह है कि हम इसे जानें। इसका पता लगाने में युग नहीं लगने चाहिए कि हम सदा क्या रहे हैं और अब क्या हैं?

फिर भी इस स्वतः प्रत्यक्ष सत्य को प्राप्त करना कठिन जान पड़ता है। इसकी एक धूमिल झाँकी मिलना आरम्भ होने के पूर्व युग पर युग बीत जाते हैं। ईश्वर जीवन है; ईश्वर सत्य है। हम इस विषय पर लिखते हैं; हम अपने अंतःकरण में अनुभव करते हैं कि यह सत्य है, कि आज यहाँ, अतीत और भविष्य में ईश्वर के अतिक्ति अन्य सभी वस्तुएँ मिथ्या है। फिर भी हममें से अधिकांश लोग जीवन भर एक से बने रहते हैं। हम असत्य से चिपटे रहते हैं और सत्य की ओर अपनी पीठ फेरते हैं। हम सत्य को प्राप्त करना नहीं चाहते। हम नहीं चाहते कि कोई हमारे स्वप्न को तोड़े। तो तुम देखते हो कि गुरुओं की आवश्यकता नहीं है। सीखना कौन चाहता है? पर यदि कोई सत्य को किसी गुरु से प्राप्त करना चाहता है, तो उसे सच्चा शिष्य होना होगा।

शिष्य होना आसान नहीं है। बड़ी तैयारियों की आवश्यकता है; बहुत सी शर्तें पूरी करनी होती हैं। वेदांतियों ने मुख्य शर्तें चार रखीं हैं।

पहली शर्त यह है कि जो शिष्य सत्य को जानना चाहता है, वह इस लोक अथवा परलोक में कुछ प्राप्त करने की सभी इच्छाओं को त्याग दे।

जो हम देखते हैं, वह सत्य नहीं है। जो हम देखते हैं, वह उस समय तक सत्य नहीं है, जब तक हमारे मन में इच्छाएँ घुस आती रहती हैं। ईश्वर सत्य है, और यह संसार सत्य नहीं है। जब तक हृदय में संसार के लिए तनिक भी इच्छा है, सत्य का उदय नहीं होगा। मेरे चारों ओर का संसार खंडहर हो जाय, मुझे चिंता नहीं। आगामी जीवन में भी ऐसा ही हो; मुझे स्वर्ग जाने की चिंता नहीं है। स्वर्ग क्या है? इस पृथ्वी का ही एक प्रस्तार है। यदि स्वर्ग न होता, पृथ्वी पर के इस मूर्खतापूर्ण जीवन का प्रस्तार न होता, तो हम आज की अपेक्षा अच्छी स्थिति में होते और आज जो मूर्खतापूर्ण स्वप्न हम देख रहे हैं, वे जल्दी भंग हो जाते। स्वर्ग जाकर हम केवल इन दुःखमय भ्रमों की अवधि ही बढ़ाते हैं।

स्वर्ग में तुमको क्या मिलता है? तुम देवता हो जाते हो, अमृत पीते हो और तुमको गठिया हो जाती है। वहाँ पृथ्वी की अपेक्षा दुःख कम है, पर सत्य भी कम है। बहुत धनी लोग सत्य को गरीबों की अपेक्षा कम समझ पाते हैं। 'सुई के छेद से ऊँट का निकल जाना सम्भव हो सकता है, पर ईश्वर के राज्य में धनी का प्रवेश सम्भव नहीं।' धनी मनुष्य के पास अपनी सम्पत्ति और शक्ति, अपनी सुविधा और विलास के अतिरिक्त और किसी वस्तु मे विषय में सोचने का समय ही नहीं होता। बहुत कम धनी धार्मिक बन पाते हैं। क्यों? इसलिए कि वे सोचते हैं कि यदि वे धार्मिक हो जायँगे, तो उनहें जीवन का आनन्द नहीं मिलेगा। इसी प्रकार स्वर्ग में आध्यात्मिक हो सकने की संभावना बहुत कम है, वहाँ अत्यधिक सुविधा और सुख है – स्वर्गनिवासी अपना सुख छोड़ने को तैयार नहीं है।

वे कहते हैं कि स्वर्ग में कभी रुदन नहीं होगा। जो मनुष्य कभी रोता नहीं, मैं उस पर विश्वास नहीं

करता; उसके हृदय के स्थान पर कठोर चट्टान का एक बड़ा टुकड़ा होता है । यह स्पष्ट है कि स्वर्ग के लोगों में बहुत सहानुभूति नहीं होती । वहाँ न जाने कितने लोग हैं और हम दुःखी इस विकट स्थान में कष्ट भोग रहे हैं । वे हमें इस सबमें से बाहर निकाल सकते हैं, पर निकालते नहीं । वे रोते नहीं । वहाँ शोक अथवा दुःख नहीं है; इसलिए वे किसी के दुःख की चिंता नहीं करते । वे अपना अमृत पीते रहते हैं, नृत्य चलते रहते हैं; सुन्दर पत्नियाँ और शेष सब ।

शिष्य को इन बातों से परे जाकर कहना चाहिए, 'मैं इस जीवन में किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता और न किसी स्वर्ग की, वे जितने भी हों–मैं उनमें से किसी में नहीं जाना चाहता । मैं किसी रूप में भी इन्द्रिय-जीवन को नहीं चाहता–अपने को शरीर नहीं समझना चाहता । जैसा मैं अभी अनुभव करता हूँ, मैं यह शरीर-मांस का यह बृहत् पिंड हूँ–यह मैं अनुभव करता हूँ कि मैं हूँ । मैं इसमें विश्वास करने को तैयार नहीं हूँ ।''

यह संसार और ये स्वर्ग, ये सब इन्द्रियों से बँधे हैं। यदि तुम्हारे इन्द्रियाँ नहीं होती, तो तुम संसार की चिंता नहीं करते । स्वर्ग भी संसार है । पृथ्वी, स्वर्ग, और वह जो सब बीच में है, उसका केवल एक नाम है–पृथ्वी ।

इसलिए जो शिष्य अतीत और वर्तमान को जानते हुए और भविष्य की सोचता है, जानता है कि समृद्धि क्या है, सुख का क्या अर्थ है, वह इन सबको छोड़ देता है, सत्य और केवल सत्य को जानना चाहता है । यह पहली शर्त है ।

दूसरी शर्त यह है कि शिष्य को अपनी अंतरिन्द्रियों और बहिरिन्द्रियों को नियंत्रित करने में समर्थ होना चाहिए और अन्य आध्यात्मिक गुणों में दृढ़ होना चाहिए।

बाह्य इन्द्रियाँ शरीर के विभिन्न भागों में स्थित दृश्य अंग हैं; अंतरिन्द्रियाँ अस्पृश्य हैं । हमारे नेत्र, कान, नाक आदि बाह्य हैं; और उनसे संगत अंतरिन्द्रियाँ हैं । हम निरंतर इन्द्रियों के इन दोनों वर्गों के संकेतों पर नाचते हैं । इन्द्रियों के समानुरूपी इन्द्रिय-विषय हैं । यदि कोई इन्द्रिय-विषय निकट होते हैं, तो इन्द्रियाँ हमें उनका अनुभव करने को विवश करती हैं; हमारी कोई इच्छा अथवा स्वतंत्रता नहीं होती । यह एक बड़ी नाक है । वहाँ तनिक भी सुगंध है, मुझे वह सूँघनी पड़ती है । यदि गंध बुरी होती, तो मैं अपने से कहता, 'इसे मत सूँघों ।'' पर प्रकृति कहती है 'सूँघ', और मैं सूँघता हूँ। तनिक सोचो तो, हम क्या हो गये हैं ! हमने अपने को बाँध लिया है । मेरे आँखें हैं । कुछ भी हो रहा हो, अच्छा या बुरा, मुझे देखना होगा । सुनने के साथ भी यही बात है । यदि कोई मुझसे बुरी तरह बोलता है, तो वह मुझे सुनना होगा । मेरी श्रवणेन्द्रिय मुझे यह करने को बाध्य करती है, और मुझे कितना दुःख अनुभव होता है । ! निंदा अथवा प्रशंसा–मनुष्य को सुननी पड़ेगी । मैंने बहुत से बहरे मनुष्य देखे हैं, जो आम तौर पर नहीं सुन पाते, पर यदि बात उनके बारे में होती है, तो वह सदा सुन लेते हैं !

ये सब इन्द्रियाँ, अंतः और बाह्य, शिष्य के नियंत्रण में होनी चाहिए । कठिन अभ्यास के द्वारा उसे ऐसी अवस्था में पहुँच जाना चाहिए, जहाँ वह अपने मन द्वारा इन्द्रियों का, प्रकृति के आदेशों का, सफल विरोध कर सके । वह अपने मन से यह कह सके ''तुम मेरे हो, मैं तुम्हें कुछ न देखने की अथवा न सुनने की आज्ञा देता हूँ,'' और मन न कुछ देखे, न कुछ सुने–मन पर किसी रूप अथवा ध्वनि की प्रतिक्रिया न हो । इस अवस्था में मन इन्द्रियों के अधिकार से मुक्त हो चुका होता है, उनसे अलग हो चुका होता है । अब वह इन्द्रियों और शरीर से आबद्ध नहीं रहता । बाह्य वस्तुएँ अब मन को आज्ञा नहीं दे सकतीं; मन अपने को उनसे जोड़ना स्वीकार नहीं करता । वहाँ सुन्दर गंध है । शिष्य मन से कहता है, 'मत सूँघो,' और मन गंध का अनुभव नहीं करता । जब तुम ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हो, तभी तुम शिष्य बनना आरम्भ करते हो । इसीलिए जब प्रत्येक मनुष्य कहता है, 'मैं सत्य को जानता हूँ ।' तो मैं कहता हूँ, 'यदि तुम सत्य को जानते हो, तो तुममें आत्मनियंत्रण होना चाहिए; और यदि तुममें आत्मनियंत्रण है, तो उसे इन इन्द्रियों के नियंत्रण के रूप में प्रकट करो ।''

इसके बाद, मन को शांत करना चाहिए । वह इधर-उधर भटकता रहता है । जब मैं ध्यान के लिए बैठता हूँ, तो मन में संसार के सब बुरे से बुरे विषय उभर आते हैं । मतली आने लगती है । मन ऐसे विचारों को क्यों सोचता है, जिन्हें मैं नहीं चाहता कि वह सोचे ? मैं मानो मन का दास हूँ । जब तक मन चंचल है और वश से बाहर है, तब तक कोई आध्यात्मिक ज्ञान सम्भव नहीं है । शिष्य को मनोनिग्रह सीखना है । हाँ, मन का कार्य सोचना है । पर यदि शिष्य नहीं चाहता, तो उसे सोचना नहीं चाहिए; जब वह आज्ञा दे, तो सोचना बन्द कर देना चाहिए । शिष्यता का अधिकारी बनने के लिए मन की यह स्थिति बहुत आवश्यक है ।

और, शिष्य की सहनशक्ति भी महान् होनी चाहिए। जीवन सुविधापूर्ण मालूम होता है; और पाते हैं कि जब सब बातें ठीक चलती रहती हैं, तो मन ठीक प्रकार से

व्यवहार करता है । पर जब कोई बात बिगड़ जाती है, तो तुम्हारा मन संतुलन खो देता है । यह ठीक नहीं है । सारी बुराई और दुःख को कष्ट की एक आह के बिना, दुःख के, विरोध के, निराकरण के और प्रतिशोध के एक विचार के बिना सहन करो । यह सच्ची सहनशक्ति है; और यह तुमको प्राप्त करनी चाहिए ।

शुभ अशुभ संसार में सदा रहे हैं । बहुत से भूल जाते हैं कि बुराई भी है–कम से कम वे भूलने का यत्न करते हैं–और जब अशुभ से पाला पड़ता है, तो वे उससे अभिभूत हो जाते हैं और कटु हो उठते हैं । और कुछ हैं, जो कहते हैं कि अशुभ बिल्कुल नहीं है, और प्रत्येक वस्तु को शुभ समझते हैं । यह भी एक दुर्बलता है; यह भी अशुभ के भय से उत्पन्न होती है । यदि कोई वस्तु बुरी गंध देती है, तो उस पर गुलाब जल क्यों छिड़को और उसे सुगंधित क्यों कहो ? हाँ, संसार में शुभ है और अशुभ है–ईश्वर ने संसार में अशुभ बनाया है । पर तुमको उस पर सफेदी नहीं पोतनी है । अशुभ क्यों है, इससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं । कृपया विश्वास रखो और शांत रहो ।

जब मेरे गुरुदेव श्री रामकृष्ण बीमार पड़े, तो एक ब्राह्मण ने सुझाया कि वे रोग से मुक्ति पाने के लिए अपनी महान् मानसिक शक्ति का उपयोग करें; उसने कहा कि यदि गुरु अपने मन को अपने शरीर के रोगी भाग पर केन्द्रित करें, तो वह अच्छा हो जायगा । श्री रामकृष्ण ने उत्तर दिया, 'क्या ! जो मन मैंने ईश्वर को दे दिया है, उसे इस क्षुद्र शरीर के लिए नीचे उतारूँ !' उन्होंने शरीर और बीमारी के विषय में सोचना अस्वीकार कर दिया । उनका मन निरन्तर ईश्वर का अनुभव करता था; वह पूर्ण रूपेण उसके प्रति अर्पित था । यह किसी दूसरे कार्य के लिए उसका उपयोग करने को तैयार नहीं थे ।

स्वास्थ्य, सम्पत्ति, दीर्घायु और ऐसी ही अन्य वस्तुओं–तथाकथित शुभ वस्तुओं–के प्रति लालसा भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । उनकी प्राप्ति के लिए उनमें मन लगाने से केवल प्रवंचना को बल मिलता है। इस जीवन में हमारे ये स्वप्न और भ्रम हैं, और हम आगामी जीवन में, स्वर्ग में उन्हें और भी अधिक परिमाण में चाहते हैं । अधिक, और अधिक भ्रम । अशुभ का विरोध मत करो । उसका सामना करो । तुम अशुभ से ऊँचे हो ।

संसार में यह दुःख है–यह किसी न किसी को सहना है । तुम किसी के लिए अशुभ की सृष्टि किये बिना कोई कार्य नहीं कर सकते । और जब तुम सांसारिक शुभ चाहते हो, तो तुम केवल एक अशुभ से बचते हो, जो किसी दूसरे को भोगना पड़ता है । प्रत्यक मनुष्य इसे दूसरे पर टालने का प्रयत्न कर रहा है । शिष्य कहता है, 'संसार के सब दुःख मेरे पास आयें; मैं उन सबको सहन करूँगा । दूसरों को मुक्त रहने दो ।'

क्रूस पर जो व्यक्ति है, उसका स्मरण करो, वह विजय के लिए फरिश्तों के दल ला सकता था; पर उसने विरोध नहीं किया । वह उनके लिए दुःखी हुआ, जिन्होंने उसे सूली दी । उसने प्रत्येक अपमान और कष्ट को सहा । उसने सबका भार अपने ऊपर लिया । 'तुम सब, जो थक रहे हो और बोझ से लदे हुए हो, मेरे पास आओ, और मैं तुम्हें विश्राम दूँगा ।' ऐसी होती है सच्ची सहनशीलता ! वह इस जीवन से कितने ऊँचे थे, इतने अधिक ऊँचे कि हम उसे समझ नहीं सकते, हम दास ! कोई मनुष्य ज्यों ही मेरे गाल पर थप्पड़ मारता है, त्यों ही मेरा हाथ तड़ाक से जवाब देता है । मैं उस महिमामय की महानता और पवित्रता को कैसे समझ सकता हूँ ? मैं उसकी गरिमा को कैसे जान सकता हूँ ?

पर मैं आदर्श को नीचे नहीं उतारूँगा । मैं अनुभव करता हूँ कि मैं शरीर हूँ; तब मैं अशुभ का प्रतिरोधी हूँ । यदि मेरे सिर में दर्द होता है, तो मैं उसे अच्छा करने के लिए संसार भर में फिरता हूँ; मैं औषधि की दो हजार बोतलें पीता हूँ । मैं उन अनूठे मनों को कैसे समझ सकता हूँ ? मैं आदर्श को देख पाता हूँ, पर आदर्श में से कितने अंश को ? इस शारीरिक चेतना में से, इस क्षुद्र अहं में से, इसके आनन्द और कष्टों में से, इसकी असुविधाओं और सुविधाओं में से कुछ भी तो उस वातावरण में नहीं पहुँच सकता । केवल आत्मा का ही चिंतन कर और सदा मन को पार्थिकता से अलग रखकर ही, मैं उस आदर्श की झाँकी प्राप्त कर सकता हूँ । उस आदर्श में ऐन्द्रिक संसार में पार्थिक विचारों और रूपों को कोई स्थान नहीं है । उन्हें परे हटाओ और मन को अध्यात्म में लगाओ । अपने जीवन और मृत्यु को, कष्टों और आनन्दों को, नाम और यश को भूल जाओ और अनुभव करो कि तुम न शरीर हो, न मन, वरन् शुद्ध आत्मा हो ।

जब मैं 'मैं' कहता हूँ, तो मेरा तात्पर्य इस जीवात्मा से है । अपने नेत्र मूँदो और देखो कि जब तुम अपने 'मैं' पर विचार करते हो, तो तुम्हारे सामने कौन सा चित्र आता है । क्या तुम्हारे सामने आनेवाला चित्र तुम्हारे शरीर का है अथवा तुम्हारे मानसिक स्वरूप का ? यदि ऐसा है, तो तुमने अपने सच्चे 'मैं' की अनुभूति नहीं प्राप्त की है । पर वह समय आयेगा, जब तुम ज्यों ही

'मैं' कहोगे तो तुम अपने सामने ब्रह्मांड को, अनन्त सत्ता को देखोगे। तब तुमको अपनी सच्ची आत्मा की अनुभूति हो चुकेगी और तुमको ज्ञान हो जायगा कि तुम अनन्त हो। सत्य यह है : तुम चेतन तत्त्व हो, तुम पार्थिव नहीं हो। एक वस्तु है भ्रम—इसमें एक वस्तु दूसरी जान पड़ती है। पदार्थ को चेतन तत्त्व और शरीर को आत्मा समझ लिया जाता है। यह बहुत बड़ा भ्रम है। इसे नष्ट होना चाहिए।

दूसरा लक्षण यह है कि शिष्य को अपने गुरु (या शिक्षक) में विश्वास होना चाहिए। पश्चिम में शिक्षक केवल बौद्धिक ज्ञान देता है और कुछ नहीं। गुरु के साथ जो संबंध है, वह जीवन में महानतम है। जीवन में मेरा प्रियतम और निकटतम संबंधी मेरा गुरु है; उसके बाद मेरी माता; फिर मेरे पिता। मेरा प्रथम आदर गुरु के लिए है। यदि मेरे पिता कहें, "यह करो", और मेरे गुरु कहें, 'इसे मत करो', तो मैं वह नहीं करूँगा। गुरु मेरी जीवात्मा को मुक्त करते हैं। पिता और माता मुझे यह शरीर देते हैं, पर गुरु मुझे आत्मा में नया जन्म देते हैं।

हमारे कुछ विचित्र विश्वास होते हैं। उनमें से एक यह है कि कुछ अपवाद-स्वरूप आत्माएँ, पहले से ही मुक्त हैं, और जो संसार की भलाई के लिए, संसार को सहायता देने के लिए यहाँ जन्म लेती हैं। वे पहले से मुक्त होती हैं; उन्हें अपनी मुक्ति की चिंता नहीं होती, वे दूसरों की सहायता करना चाहती हैं। उन्हें कोई बात सिखाने की आवश्यकता नहीं होती। वे अपने बचपन से ही सब कुछ जानती हैं; वे जब छः महीने की शिशु होती हैं, तभी उच्चतम सत्य को वाणी से प्रकट कर सकती हैं।

मानव जाति की आध्यात्मिक प्रगति इन मुक्त आत्माओं पर निर्भर है। वे उन प्रथम दीपों के समान हैं, जिनसे अन्य दीप जलाये जाते हैं। यह सही है कि प्रकाश सबमें हैं, पर अधिकतर लोगों में वह छिपा हुआ है। महात्मा आरम्भ से ही देदीप्यमान ज्योति होते हैं। उनके सम्पर्क में आनेवाले मानो उनसे अपने दीप जला लेते हैं। इससे प्रथम दीप की कोई हानि नहीं होती; फिर भी वह अपना प्रकाश दूसरे दीपों को पहुँचाता है। करोड़ों दीप जल जाते हैं; पर प्रथम दीप अमंद ज्योति से जगमगाता रहता है। प्रथम दीप गुरु है और जो दीप उससे जलाया जाता है, वह शिष्य है। दूसरा अपनी बारी आने पर, गुरु बनता है और यह क्रम चलता जाता है। वे महान् आत्माएँ, जिन्हें तुम ईश्वर का अवतार कहते हो, महा बलशाली आध्यात्मिक दिग्गज होते हैं। वे आते हैं और अपनी शक्ति को अपने निकटतम शिष्यों को और उनके द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्यों को पहुँचाकर एक अति विशाल आध्यात्मिक प्रवाह को जन्म देते हैं।

ईसाई धर्मसंघ में एक विशप हाथ फेरकर उस शक्ति को संप्रेषित करने का दावा करता है, जिसे समझा जाता है कि, उसने पहले के विशपों से प्राप्त किया है। विशप कहता है कि ईसा मसीह ने अपनी शक्ति अपने निकतट शिष्यों को संप्रेषित की और उन्होंने दूसरों को। और इस प्रकार ईसा की शक्ति उस तक पहुँची है। हमारा मत है कि हममें से प्रत्येक के पास, केवल विशपों के पास ही नहीं, ऐसी शक्ति होनी चाहिए। इसका कोई कारण नहीं है कि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिकता की इस शक्तिशाली धारा का वाहक न हो सके। पर पहले तुमको एक गुरु, एक सच्चा गुरु, खोजना चाहिए, और तुमको यह याद रखना चाहिए कि वह केवल मामूली मनुष्य नहीं होता। तुमको शरीरधारी गुरु मिल सकता है, पर वास्तविक गुरु शरीर में नहीं होता; वह भौतिक मनुष्य नहीं होता—वह, वह नहीं होता, जो तुम्हारी आँखों को दिखायी देता है। यह हो सकता है कि गुरु तुम्हारे पास मनुष्य के रूप में आये और तुम उससे शक्ति प्राप्त करो, कभी-कभी वह स्वप्न में आयेगा और संसार को कुछ दे जायगा। गुरु की शक्ति हम तक अनेक प्रकार से आ सकती है। पर हम साधारण नश्वर प्राणियों के लिए गुरु को ही आना चाहिए और उसके आने तक हमारी तैयारी चलती रहनी चाहिए।

हम भाषण सुनते हैं और पुस्तकें पढ़ते हैं, परमात्मा और जीवात्मा, धर्म और मुक्ति के बारे में विवाद और तर्क करते हैं। वह आध्यात्मिकता नहीं है, क्योंकि आध्यात्मिकता पुस्तकों में, अथवा सिद्धांतों में अथवा दर्शनों में निवास नहीं करती। यह विद्वत्ता और तर्क में नहीं, वरन् वास्तविक अंत:विकास में होती है। तोते भी बातों को याद कर सकते हैं और उन्हें दोहरा सकते हैं। यदि तुम विद्वान् हो जाते हो, तो उससे क्या ? गदहे पूरा पुस्तकालय ढोते फिर सकते हैं। इसलिए जब वास्तविक प्रकाश आयेगा, तो पुस्तकों की यह विद्वत्ता—किताबी विद्वत्ता नहीं रहेगी। वह मनुष्य जो अपना नाम भी नहीं लिख सकता, पूर्णतया धार्मिक हो सकता है; और वह मनुष्य, जिसके मस्तिष्क में संसार के सब पुस्तकालय भरे हों, वैसा होने में असफल रह सकता है। विद्वत्ता आध्यात्मिक प्रगति की शर्त नहीं है। गुरु का स्पर्श, आध्यात्मिक शक्ति का संचरण, तुम्हारे हृदय में जान फूँक देगा। तब विकास आरम्भ होगा। सच्ची अग्नि-दीक्षा यही है। अब रुकना नहीं है। तुम आगे, और आगे बढ़ते जाते हो।

कुछ वर्ष हुए तुम्हारे ईसाई शिक्षकों में से एक ने जो मेरे मित्र थे, पूछा, 'तुम ईसा में विश्वास करते हो ?' 'हाँ', मैंने उत्तर दिया; 'पर कदाचित् थोड़ी अधिक श्रद्धा के साथ।' 'तो तुम बपतिस्मा (दीक्षा) क्यों नहीं ले

लेते ?' मुझे बपतिस्मा कैसे दिया जा सकता है ? किसके द्वारा ? वह मनुष्य कहाँ है, जो सच्चा बपतिस्मा दे सकता है ? बपतिस्मा का अर्थ क्या है ? क्या यह फार्मूले बोलते हुए तुम्हारे पर पानी छिड़क देना अथवा तुमको पानी में डूबो देना है ?

बपतिस्मा का अर्थ है, आध्यात्मिक जीवन में सीधा प्रवेश। यदि तुमको वास्तविक बपतिस्मा मिलता है, तो तुम जानते हो कि तुम शरीर नहीं हो, वरन् आत्मा हो। यदि तुम दे सकते हो, तो मुझे वह बपतिस्मा दो। यदि नहीं, तो तुम ईसाई नहीं हो। तथाकथित बपतिस्मा प्राप्त हाने के बाद तो तुम पूर्ववत् ही रहते हो। केवल यह कहने का क्या अर्थ है कि तुमको ईसा के नाम में बपतिस्मा दिया गया है ! कोरी बकबक–अपनी मूर्खता से संसार को निरंतर क्षुब्ध करना !' सदा अज्ञानान्धकार में लिपटे हुए, फिर भी अपने को बुद्धिमान ओर विद्वान् समझते हुए, मूर्ख इधर-उधर लड़खड़ाते अंधे द्वारा मार्ग-दर्शित अंधे के समान बार-बार चक्कर काटते हैं।' इसलिए यह मत कहो कि तुम ईसाई हो, बपतिस्मा और इसी प्रकार की अन्य बातों की डींग मत हाँको।

निश्चय ही सच्चा बपतिस्मा होता है, जैसे आरम्भ में जब ईसा पृथ्वी पर आये और उन्होंने उपदेश दिया। वे प्रबुद्ध, वे महान् आत्माएँ जो समय-समय पर पृथ्वी पर आती रहती हैं, उनमें हमारे प्रति ईश्वरीय दर्शन का उद्घाटन करा देने की शक्ति रहती है। यही सच्चा बपतिस्मा है। तुम देखते हो कि प्रत्येक धर्म में फार्मूलों और कर्मकांडों से पहले सार्वभौम सत्य का बीज रहता है। समय की मात्रा में यह सत्य बिसर जाता है; मानो बाह्य रूपों और अनुष्ठानों ने उसका गला घोंट दिया हो। रूप रह जाते हैं–हम केवल मंजूषा को पाते हैं, जिसमें से आत्मा उड़ गयी है। तुम्हारे पास बपतिस्मे का रूप है, पर बपतिस्मे के जीवंत तत्त्व को बहुत थोड़े ही जगा सकते हैं। रूप से काम नहीं चलेगा। यदि हम जीवंत सत्य का जीवंत ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें उसमें सच्चाई के साथ दीक्षित होना होगा। यही आदर्श है।

गुरु मुझे सिखाये और प्रकाश में पहुँचाये, मुझे उस शृंखला की एक कड़ी बनाये, जिसकी कि वह स्वयं एक कड़ी है। साधारण मनुष्य गृह बनने का दावा नहीं कर सकता। गुरु ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जिसने जान लिया है, दैवी सत्य को वास्तव में अनुभव कर लिया है, और अपने को आत्मा के रूप में देख लिया है। केवल बातें करनेवाला गुरु नहीं हो सकता। मेरे समान एक वाचाल मूर्ख बातें बहुत बना सकता है, पर गुरु नहीं हो सकता। एक सच्चा गुरु शिष्य से कहेगा, 'जा और अब पाप न कर', और शिष्य अब पाप नहीं कर सकता–उस व्यक्ति में पाप करने की शक्ति नहीं रहती।

मैंने इस जीवन में ऐसे मनुष्यों को देखा है। मैंने बाइबिल और इस प्रकार के सब ग्रंथ पढ़े हैं; वे अद्भुत हैं। पर जीवन्त शक्ति तुमको पुस्तकों में नहीं मिल सकती। वह शक्ति, जो एक क्षण में जीवन को परिवर्तित कर दे केवल उन जीवंत प्रकाशवान आत्माओं से ही प्राप्त हो सकती है, जो समय समय पर हमारे बीच में प्रकट होती रहती है। केवल वे ही गुरु होने के योग्य हैं। तुम और मैं केवल थोथी बकबक है, गुरु नहीं। हम अपनी बातों से अवाँछनीय कम्पन उत्पन्न करके संसार को अधिक क्षुब्ध कर रहे हैं। हम आशा करते हैं, प्रार्थना करते हैं और संघर्ष करते जाते हैं, और वह दिन आयेगा, जब हम सत्य पर पहुँचेंगे और हमें बोलने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

'गुरु एक सोलह वर्ष का लड़का था; उसने एक अस्सी वर्ष के मनुष्य को सिखाया। गुरु की शिक्षण-विधि मौन थी; और शिष्य की सब शंकाओं का सदा के लिए समाधान हो गया।' यह है गुरु। तनिक सोचो, यदि तुमको ऐसा व्यक्ति मिले, तो तुमको उस व्यक्ति के प्रति कितना विश्वास और प्रेम रखना चाहिए। क्यों, वह साक्षात् ईश्वर है, उससे तनिक भी कम नहीं। इसलिए ईसा के शिष्यों ने ईश्वर के समान उसकी पूजा की। शिष्य को गुरु की पूजा स्वयं ईश्वर के समान करनी चाहिए। जब तक मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार स्वयं ही न कर ले वह अधिक से अधिक सजीव ईश्वर को, मनुष्य के रूप में ईश्वर को ही जान सकता है, इसके अतिरिक्त वह ईश्वर को कैसे जानेगा ?

यहाँ अमेरिका में एक व्यक्ति है, ईसा से १९०० वर्ष बाद पैदा हुआ, जो ईसा की यहूदी जाति का भी नहीं है। उसने ईसा अथवा उसके परिवार को नहीं देखा है। वह कहता है, "ईसा ईश्वर थे। यदि तुम इसमें विश्वास नहीं करते, तो तुम नरक में जाओगे।' हम समझ सकते हैं कि शिष्यों ने इस पर कि ईसा ईश्वर है, किस प्रकार विश्वास किया; उनके गुरु थे, और उन्होंने विश्वास किया होगा कि वे ईश्वर हैं। पर इस अमेरिकन का उन्नीस सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए उस मनुष्य से क्या संबंध है ? यह युवक मुझसे कहता है कि अगर मैं ईसा में विश्वास न करूँ, तो मुझे नरक जाना पड़ेगा। यह ईसा के विषय में क्या जानता है ? वह पागलखाने के योग्य है। इस प्रकार के विश्वास से काम नहीं चलेगा। उसे अपना गुरु खोजना पड़ेगा।

ईसा फिर जन्म ले सकते हैं, तुम्हारे पास आ सकते हैं। तब यदि तुम ईश्वर की भाँति उनकी पूजा करो, तो तुम ठीक करोगे। हम सबको गुरु के आगमन के समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, और गुरु की पूजा ईश्वर की भाँति की जानी चाहिए। वह ईश्वर है, उससे तनिक भी कम नहीं। गुरु तुम्हारे देखते-देखते क्रमशः

अंतर्धान हो जाते हैं, और रह क्या जाता है ? गुरु के चित्र का स्थान स्वयं ईश्वर ले लेता है । गुरु वह आभामय चेहरा है, जिसे ईश्वर हम तक पहुँचने के लिए धारण करता है । जब हम एकटक उसे निहारते हैं, तो धीरे-धीरे चेहरा गिर जाता है और ईश्वर प्रकट हो जाता है ।

'मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ, जो दैवी आनन्द की मूर्ति हैं, उच्चतम ज्ञान के विग्रह है, और महानतम दैवी आनन्द के दाता हैं, जो शुद्ध, पूर्ण, अद्वितीय, सनातन, सब सुख-दुःख से परे, सर्वगुणातीत और सर्वोच्च हैं ।' वास्तव में गुरु ऐसे होते हैं । इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि शिष्य उन्हें ईश्वर समझता है और उनमें विश्वास रखता है, श्रद्धा रखता है, उनकी आज्ञा पालता है और बिना शंका किये उनके पीछे चलता है । गुरु और शिष्य के बीच का संबंध ऐसा ही है ।

शिष्य को अगली शर्त जो पूरी करनी है, वह यह है कि उसमें मुक्त होने की आकांक्षा अत्यन्त तीव्र हो ।

हम उन पतिंगों के समान हैं, जो धधकती ज्वाला में प्रवेश करते हैं, यह जानकर कि वह हमें जला डालेगी, यह जानकर कि इन्द्रियाँ हमें केवल जलाती हैं, वे केवल वासनाओं में वृद्धि करती हैं । 'वासनाएँ कभी भोग से तृप्त नहीं होतीं । भोग से वासनाओं में उसी प्रकार वृद्धि होती है, जैसे अग्नि को दिया हुआ घी अग्नि में वृद्धि करता है ।' वासना से वासना बढ़ती है । यह सब जानते हुए भी लोग सदा इसमें डुबकी लगाते रहते हैं । जन्म-जन्मान्तरों से वे वासना-वस्तुओं के पीछे दौड़ते रहे हैं, फलस्वरूप भयंकर यातनाएँ भोगते रहे हैं, फिर भी वे वासनाओं से पीछा नहीं छुड़ा पाते । जिस धर्म को उन्हें वासनाओं के इस भयकारी बंधन से मुक्त करना चाहिए था, उस धर्म को भी उन्होंने अपनी वासनाओं की पूर्ति का साधन बना लिया है । वे कदाचित् ही कभी ईश्वर से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उनको इस शरीर और इन्द्रियों के बंधन से, वासनाओं की इस दासता से मुक्ति दिलाये । इसके स्थान पर, वे उससे स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए, दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते हैं, 'हे ईश्वर, मेरा सिर-दर्द दूर करो, मुझे कुछ धन अथवा अमुक वस्तु दो ।'

दृष्टि का क्षेत्र इतना छोटा, इतना पतित, इतना पशुतामय, इतना जंगली हो गया है ! इस शरीर से परे कोई किसी वस्तु की कामना नहीं करता । ओह, यह भयानक पतन, इसकी यह भयानक यातना ! मांस का तनिक सा पिण्ड, पाँच इन्द्रियाँ, यह पेट ! उदर और यौन संघात के अतिरिक्त यह संसार क्या है ? करोड़ों नर-नारियों को देखो—यही है, जिसके लिए वे जी रहे हैं । इन्हें उनसे छीन लो, तो उनहें अपना जीवन रिक्त, निरर्थक ओर असह्य जान पड़ेगा । हम ऐसे हैं । और ऐसा हमारा मन है; यह निरंतर उन उपायों और साधनों के पीछे भटकता रहता है, जिनसे हमारी उदर और काम की भूख को तृप्ति प्राप्त हो । यह निरंतर चल रहा है । साथ ही अनन्त दुःख भी है; शरीर को ये वासनाएँ केवल क्षण भर के लिए संतोष देती हैं और अनन्त दुःख लाती हैं । यह उस प्याले को पीने के समान है, जिसकी ऊपरी तह तो अमृत है, पर उसमें नीचे हलाहल भरा हुआ है । पर फिर भी हम इन सब वस्तुओं के पीछे पागल हैं ।

किया क्या जा सकता है ? इस क्लेश से निकलने का केवल एक मार्ग है, सब इन्द्रियों और वासनाओं का परित्याग । यदि तुम आध्यात्मिक बनना चाहते हो, तो तुमको त्याग करना होगा । यह असली कसौटी है। इस संसार को छोड़ो—इन्द्रियों की इस निरर्थकता को । सच्ची इच्छा केवल एक है : यह जानना कि सत्य क्या है, आध्यात्मिक होना । अधिक भौतिकता नहीं, अधिक अहं नहीं । मुझे आध्यात्मिक बनना ही होगा । इच्छा को शक्तिशाली, तीव्र होना चाहिए । यदि किसी मुनष्य के हाथ-पैर इस प्रकार बाँध दिये जायँ कि वह हिल-डुल न सके और तब उसके शरीर पर दहकता अंगारा रखा जाय, तो वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उसे हटा देने का प्रयास करेगा । जब मुझमें इस प्रकार की तीव्र इच्छा इस जलते हुए संसार को हटा फेंकने के वास्ते अथक संघर्ष करने के लिए उत्पन्न होगी, तो मेरे लिए दैवी सत्य की झाँकी मिलने का समय आ जायगा ।

मुझे देखो । यदि मेरी छोटी-सी नोटबुक, जिसमें दो-तीन डॉलर हैं, खो जाती है, तो मैं उसे ढूँढ़ने के लिए बीस बार घर के भीतर जाता हूँ । वह फिक्र, वह चिंता, वह कशमकश ! यदि तुममें से कोई मुझे क्रुद्ध कर देता है, तो मैं उसे बीस वर्ष याद रखता हूँ, मैं न क्षमा कर सकता हूँ, न भूल सकता हूँ । इन्द्रियों की छोटी सी वस्तुओं के लिए मैं इस प्रकार संघर्ष कर सकता हूँ । वह कौन है, जो ईश्वर के लिए इस प्रकार प्रयास करता है ? 'बालक अपने खेल में सब कुछ भूल जाते हैं । युवक इन्द्रियों के आनन्द के पीछे पागल हैं; उन्हें और किसी बात की चिंता नहीं है । वृद्ध अपने पुराने दुष्कृत्यों के लिए पश्चात्ताप कर रहे हैं' (शंकर) । वे अपने पुराने भोगों के विषय में सोच रहे हैं—वे वृद्ध, जो अब कोई भोग नहीं प्राप्त कर सकते । वे जुगाली कर रहे हैं—वे अधिक से अधिक यही कर सकते हैं । कोई उतनी तीव्र लगन के साथ ईश्वर के लिए आतुर नहीं होता, जितनी तीव्रता से वे इन्द्रिय-भोग्य वस्तुओं के लिए लालायित होते हैं ।

सभी लोग कहते हैं कि ईश्वर ही सत्य है, वही एक है, जो वास्तव में है; केवल चेतना की ही सत्ता है, पदार्थ की नहीं । फिर भी ईश्वर से वे जो माँगते हैं, वह शायद ही चेतना होती है । वे सदा पार्थिव

वस्तुओं की याचना करते हैं । उनकी प्रार्थना में चेतन को जड़ से अलग नहीं रखा जाता । धर्म अब केवल पतन ही रह गया है । सब कुछ पाखंड बनता जा रहा है । वर्ष बीतते जा रहे हैं और आध्यात्मिक उपलब्धि कुछ भी नहीं होती । पर मनुष्य को केवल एक वस्तु की भूख होनी चाहिए, आत्मा की, क्योंकि केवल आत्मा का ही अस्तित्व है । यही आदर्श है । यदि तुम इसे अभी नहीं प्राप्त कर सकते, तो कहो, 'मैं अभी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता । वह आदर्श है, मैं जानता हूँ, पर मैं अभी उसको चरितार्थ नहीं कर सकता ।'' पर तुम यह नहीं करते । तुम धर्म को निम्न स्तर पर उतार लाते हो और आत्मा का नाम लेकर जड़ के पीछे दौड़ते हो । तुम सब नास्तिक हो, तुम इन्द्रियों के अतिरिक्त और किसी में विश्वास नहीं करते ! 'अमुक ने ऐसा ऐसा कहा है– इसमें कुछ तत्त्व हो सकता है । हम कर देखें और मजा लें । हो सकता है, कुछ लाभ हो जाय; शायद मेरी टूटी टाँग ठीक हो जाय ।'

रोगी लोग बहुत दुःखी होते हैं; वे ईश्वर के बड़े उपासक होते हैं, इसलिए कि ने आशा करते हैं कि यदि वे उससे प्रार्थना करेंगे, तो वह उन्हें चंगा कर देगा। ऐसा नहीं है कि यह सब एकदम बुरा है–यदि ऐसी प्रार्थनाएँ सच्ची हों और लोग यह याद रखें कि यह धर्म नहीं है । गीता में (७/१६) श्री कृष्ण कहते हैं, 'चार प्रकार के मनुष्य मेरी उपासना करते हैं : आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और सत्य के ज्ञाता ।' जो लोग दुःख ग्रस्त होते हैं, वे सहारे के लिए ईश्वर के निकट जाते हैं । यदि वे रोगी होते हैं, तो नीरोग होने के लिए उसकी पूजा करते हैं; यदि उनका धन नष्ट हो जाता है, तो वे उसकी पुनः प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं । और दूसरे लोग हैं, जो वासनाओं से भरे हैं, वे उससे सब प्रकार की वस्तुएँ माँगते हैं–नाम, यश, सम्पत्ति, पद इत्यादि । वे कहते हैं, 'हे पवित्र मेरी, यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण हो जायगी, तो मैं तुम्हें एक भेंट चढ़ाऊँगा । यदि तुम मेरी इच्छा पूर्ण करने में सफल होती हो, तो मैं ईश्वर की पूजा करूँगा और प्रत्येक वस्तु का एक अंश तुम्हें दूँगा ।' जो मनुष्य इतने सांसारिक नहीं होते, पर फिर भी जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं है, वे उसके बारे में जानने की इच्छा रखते हैं । वे दर्शनों का अध्ययन करते हैं, धर्मशास्त्र पढ़ते हैं, उपदेश सुनते हैं और ऐसे ही अन्य कार्य करते हैं । वे जिज्ञासु हैं । अंतिम श्रेणी उन लोगों की है, जो ईश्वर की पूजा करते हैं और उसे जानते हैं। ये चारों श्रेणियाँ भली हैं, बुरी नहीं । ये सब उसकी उपासना करते हैं ।

पर हम शिष्य बनने का प्रयत्न कर रहे हैं । हमारा एकमात्र ध्येय है, उच्चतम सत्य के ज्ञान की प्राप्ति । हमारा ध्येय सबसे ऊँचा है । हमने अपने से बड़े-बड़े शब्द कहे हैं–परम अनुभूति आदि । हमें उन शब्दों के अनुरूप होना चाहिए । हम आत्मा में स्थित होकर आत्मा में आत्मा की उपासना करें । हमारा आधार आत्मा है, मध्य आत्मा है और अंत आत्मा है । संसार कहीं न हो । उसे जाने दो और आकाश में चक्कर लगाने दो–चिंता क्या है ? तुम आत्मा में स्थित हो ! यह ध्येय है । हम जानते हैं कि हम अभी उस तक नहीं पहुँच सकते । चिंता मत करो, निराश न होओ और आदर्श को नीचे न घसीटो । महत्त्वपूर्ण बात यह है : कि तुम इस शरीर के बारे में, अपने बारे में, जड़ के रूप में,–मृत, जड़, अचेतन पदार्थ के रूप में कितना कम सोचते हो और अपने बारे में एक उज्ज्वल, अमर अस्तित्व के रूप में कितना अधिक सोचते हो; तुम अपने को उज्ज्वल, अमर अस्तित्व के रूप में जितना अधिक सोचोगे, उतने ही अधिक तुम पदार्थ, शरीर और इन्द्रियों से सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक होगे । मुक्त होने की तीव्र इच्छा यही है ।

चौथी और अंतिम शर्त शिष्यता की यह है कि उसे सत् और असत् का विवेक हो; केवल एक वस्तु–ईश्वर-है, जो सत्य है । सर्वदा मन उनकी ओर लगा रहे, उसे समर्पित रहे । ईश्वर है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, और सब आता जाता रहता है । संसार की कोई भी इच्छा भ्रम है, इसलिए कि संसार मिथ्या है । जब तक और सब मिथ्या–जैसा वह वास्तव में है–प्रतीत न होने लगे, मन को केवल ईश्वर के प्रति ही अधिकाधिक अनुभवशील होना चाहिए ।

ये वे चार शर्तें हैं, जिन्हें शिष्य बनने की इच्छा रखनेवाले को पूरा करना होगा । इनको पूरा किये बिना वह सच्चे गुरु के सम्पर्क में आने का अधिकारी नहीं बनेगा । और यदि सौभाग्यवश वह उसके सम्पर्क में आ भी जाता है, तो गुरु द्वारा संचरित शक्ति से उसे स्फुरण नहीं प्राप्त होगा । इन शर्तों में कोई समझौता नहीं हो सकता । इन सब शर्तों के–इन सब तैयारियों के–पूर्ण होने पर शिष्य का हृदय-कमल खिलेगा और तब भ्रमर आयेगा । तब शिष्य को ज्ञान होगा कि गुरु उसके शरीर में, उसके भीतर था । वह खिलता है । वह अनुभूति पाता है । वह जीवन के सागर को पार करता है, परे जाता है । वह इस भयावह सागर को पार करता है; और दयावश बिना लाभ अथवा स्तुति का विचार किये, दूसरों को इसे पार करने में सहायता देता है ।

❑

श्री श्री माँ की स्मृतियाँ

–स्वामी निर्वाणानन्द

(स्वामी निर्वाणानन्द (सुज्जी महाराज) श्री श्रीरामकृष्ण के मानस-पुत्र एवं रामकृष्ण मठ एवं मिशन के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मनन्दजी महाराज के शिष्य एवं रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे। उनके द्वारा बंगला में लिखित श्री श्री माँ की स्तुतियाँ बंगला भाषा में प्रकाशित 'श्री श्री मायेर पद-प्रान्तें नामक पुस्तक (खंड-३) में छपी थी। श्रीमती मालती सेनगुप्ता द्वारा अँग्रेजी में अनूदित होकर यह लेख रामकृष्ण मठ, चेन्नई से प्रकाशित 'वेदान्त केशरी' के मई २००४ अंक से छपा था जिसकी उपयोगिता को देखते हुए वेदान्त केसरी से इस लेख का हिन्दी में अनुवाद डॉ० केदारनाथ लाभ ने किया है–सं०)

एक ब्रह्मचारी के रूप में सन् १९१२ ई० में मैं काशी (अब वाराणसी) सेवाश्रम में सम्मिलित हुआ। उस समय महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द), महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द), हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द), मास्टर महाशय (श्री 'म'), ये सब वहाँ उपस्थित थे। श्री माँ भी उन दिनों काशी में, 'लक्ष्मी निवास' में रह रही थीं। एक दिन उन्हें पालकी में बैठाकर सेवाश्रम में लाया गया। स्वामी शान्तानन्द एवं चारु बाबू (कालान्तर में स्वामी शुभानन्द) मार्ग रक्षणार्थ उनके साथ आये थे। माँ एक कुर्सी पर बैठीं। एक भक्त ने उनसे पूछा : माँ, यह स्थान आपको कैसा लगता है ? माँ ने उत्तर दिया : 'मैं ने पाया कि यहाँ सर्वत्र ठाकुर स्वयं विराज रहे हैं। रोगियों को नारायण का जीवन्त विग्रह मानकर उनकी सेवा करते हुए लड़के स्वयं ठाकुर की सेवा कर रहे हैं। माँ की इस उक्ति ने और अधिक काम में लगने की प्रेरणा हम सब को दी। उन दिनों सेवाश्रम में साधु और ब्रह्मचारियों की संख्या कम थी, और मुझे वार्ड के भीतर भर्ती रोगियों की परिचर्या और सेवा करने का दायित्व दिया गया था। रोगियों की सेवा नारायण के रूप में करना वास्तविकता में सचमुच बड़ा कठिन है। मैं सेवाश्रम में लगभग दो वर्षों तक था और इस अवधि में मैंने नारायण की जीवन्त प्रतिमा मानकर रोगियों की सेवा करने की अत्यधिक चेष्टा की। श्री माँ के वचनों से उत्प्रेरित, महाराज (स्वामी ब्रह्मनन्दजी) के द्वारा उत्साहित तथा हरि महाराज के द्वारा अभिप्रेरित होने से मैं अपना कार्य सम्पन्न करने में समर्थ हो सका था।

अनेक अवसरों पर–काशी, बागबाजार तथा बेलुड़ मठ में–श्री माँ को महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) द्वारा प्रणाम निवेदित करते हुए देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। मैं ध्यानपूर्वक अवलोकन किया करता था कि श्री माँ की उपस्थिति में महाराज कभी भी अपने में नहीं रहते थे। वे भावात्मक भक्ति से अभिभूत हो जाते थे। उनके पाँव लड़खड़ाने लगते और वे स्थिरतापूर्वक खड़े नहीं रह पाते थे। उनका सारा शरीर काँपने लगता था। किसी तरह वे प्रणाम निवेदन कर लेने में सफल हो जाते और तदुपरान्त जल्दी से हड़बड़ाकर बाहर निकल जाते थे। अक्सर, काशी या उदबोधन स्थित 'मायेर बाड़ी' (माँ के निवास-स्थल) में वे सीढ़ी तक नहीं चढ़ पाते थे। वे सीढ़ी से नीचे खड़े हो जाते तथा अपने जुड़े हुए हाथों को अपने माथे तक उठा कर, माँ को अपने प्रणाम प्रेषित किया करते थे। मैंने बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द), महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) तथा दूसरों को भी माँ को प्रणाम निवेदित करते देखा है। वे सब भी करीब-करीब इसी अवस्था में रहा करते थे परन्तु बिल्कुल उस सीमा तक नहीं।

१९१४ में ब्रह्मचर्य में मेरे दीक्षित होने के उपरान्त मैं श्री माँ का आशीर्वाद लेने उद्बोधन (मायेर बाड़ी) गया। उन दिनों सीढ़ी से चढ़कर माँ के कमरे में जाने के लिए मात्र एक सँकड़ा बरामदा हुआ करता था। वह बरामदा उतना चौड़ा नहीं था जितना आजकल हमलोग देखते हैं। सीढ़ी से नीचे का प्राङ्गण बड़ा था। जब मैंने श्री श्री माँ को प्रणाम निवेदित कर लिया तो इसके बाद श्री माँ ने मुझसे कुछ भजन गाने को कहा। आंगन में एक शतरंजी बिछाकर मैं बैठ गया और कुछ भजन गाये। प्रसन्न होकर माँ ने कुछ प्रसाद भेजा। मठ जाने के पूर्व जब मैं श्री माँ से विदा लेने गया, उन्होंने मेरे मस्तक पर अपने हाथ रख दिये तथा स्नेहपर्वूक मुझे आशीर्वाद दिया।

वह १९१५ का मार्च या अप्रैल का महीना था। उन दिनों मैं बेलुड़ मठ में महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) की सेवा में निरत था। मैं अपनी उम्र के साधुओं और ब्रह्मचारियों को महाराज की आज्ञा लेकर तपस्या पर जाते देखा करता था। वे हिमालय अथवा अन्य स्थान पर चले जाते थे तथा आध्यात्मिक साधना में एक वर्ष या प्रायः इसी तरह कुछ कमोवेश समय लगाया करते थे। एक दिन मैं भी महाराज के पास गया तथा तपस्या के लिए जाने देने की अनुमति माँगी, तुरन्त उन्होंने कहा : 'तुम यहाँ और दूसरा क्या कर रहे हो ?' तुम्हारे द्वारा यहाँ सेवा करना तपस्या से कहीं अधिक सार्थक है। तुम्हें कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है।' इन कथनों के बावजूद जब मैं अनुमति देने के लिए उन पर जोर देता रहा तब उन्होंने सुझाव दिया कि मैं महापुरुष महाराज से अनुमति प्राप्त करूँ। महापुरुष महाराज ने ज्योंही मेरा अनुनय सुना उन्होंने चिल्लाते हुए कहा :

'पागल हो क्या ? तपस्या के लिए तुम और कहाँ जाओगे ? विश्वास रखो कि केवल महाराज की सेवा करने मात्र से सब कुछ पाया जा सकता है ।' फिर भी मैं अपनी प्रार्थना पर अड़ा रहा । अंत में उन्होंने कहा : 'ठीक है, बाबूराम महाराज के पास जाओ । तुम तभी तपस्यार्थ जा सकते हो जब वे तुम्हें आज्ञा दे दें ।' जब मैं बाबूराम महाराज के पास गया तो उनकी प्रतिक्रिया भी ठीक वैसी ही थी, बल्कि अधिक प्रचंड। वे चिल्ला उठे : 'सुज्जी, क्या तुम सचमुच पागल हो गये हो ? क्या तुम नहीं देखते कि महाराज के भीतर श्री श्री ठाकुर निवास करते हैं ? क्या तुम कहीं अन्यत्र भगवान श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक (मानस) पुत्र की ऐसी गहरी निकटता प्राप्त कर सकते हो ? अन्ततः मेरे निवेदन पर वे झुक गये और उन्होंने कहा : 'ठीक है, माँ अभी उद्बोधन में हैं, यदि वे आज्ञा देती हैं तब तुम जा सकते हो । परन्तु पहले काली घाट जाओ और वहाँ काली की उपासना करो । इसके बाद श्री माँ के पास उनके आशीर्वाद के लिए जाओ । जान लो कि वे जो काली घाट में रहती हैं तथा वे जो बाग बाजार (उद्बोधन) में रहती हैं, दोनों एक और समान हैं ।

कालीघाट के मन्दिर का दर्शन कर मैं उद्बोधन पहुँचा । माँ के दर्शनार्थी भक्तों की कतार में मैं अन्तिम व्यक्ति था । दूर से मैंने माँ को अपने मुख पर घूँघट डाल कर बैठी हुई तथा प्रणाम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आशीर्वाद देते हुए देखा । अन्ततः सभी भक्त प्रस्थान कर गये और अब मेरी बारी थी । जब मैं उनके चरणों पर साष्टांग प्रणाम कर उठ खड़ा हुआ तो मैंने देखा कि माँ ने अपने चेहरे से पूरी तरह घूँघट हटा लिया था । पूर्ण रूप से मुस्कुराती हुई उन्होंने कहा : 'बच्चा, यह मिठाई लो, इसे खाओ ।' उन्होंने अपने हाथों से मुझे प्रसाद दिया । मैंने उन्हें मठ की गतिविधियों का विवरण दिया । अन्त में मैंने अपना निवेदन उनके समक्ष प्रस्तुत किया । धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनने के बाद माँ ने कहा : 'मेरे बच्चे, ठाकुर बाहर जाने और कठोर तपस्या करने की आदत को पसन्द नहीं करते थे । इसके अलावे तुम मठ और राखाल को छोड़कर तपस्या के लिए कहाँ जाओगे ? तुम राखाल की सेवा कर रहे हो, क्या यही काफी नहीं है ?' परन्तु मैं तपस्या के लिए उनकी आज्ञा और आशीर्वाद पाने के लिए बचकानी जिद करता रहा। मुझे दृढ़ अटल पाकर माँ झुक गयीं : 'ठीक है, तुम तपस्या के लिए जा सकते हो, लेकिन काशी जाओ । तथापि तुम्हें मुझे वचन देना होगा कि तुम इच्छापूर्वक और अनावश्यक रूप से कठोरता का पालन नहीं करोगे । यदि रास्ते में बिना माँगे मदद मिलती है तो तुम उसे स्वीकार करोगे । यहाँ तक कि तपस्या के दौरान काशी में यदि कोई व्यक्ति तुम्हें कोई वस्तु प्रदान करता है तो तुम उसे अंगीकार करोगे । तुम सेवाश्रम में टिकोगे और यदि प्रबल आकांक्षा हो तो भिक्षाटन के लिए बाहर जा सकते हो । इससे दोनों उद्देश्यों—काशीवास (तीर्थस्थान काशी में निवास) और तपस्या—की पूर्ति हो जायगी ।' मैंने उन्हें वचन दिया कि मैं आपके आदेशों का पालन करूँगा । फिर भी मैंने काशी की यात्रा पाँव-पैदल करने की अनुमति ले ली । मैंने उनकी सहमति तो ले ली परन्तु मुझे यह बोध था कि मेरा प्रस्ताव श्री माँ को पसन्द नहीं था । श्री माँ को प्रणाम करने तथा उनका आशीर्वाद लेने के उपरान्त मैं प्रसन्नतापूर्वक मठ लौटा तथा महाराज, महापुरुष महाराज एवं बाबूराम महाराज को सारी बातें कह सुनायी ।

कुछ महीनों के बाद, सूर्योदय के पूर्व गंगा में स्नान कर कपड़े का एक छोटा झोला लेकर मैंने काशी के लिए प्रस्थान किया । मेरे एक हाथ में दण्ड और दूसरे में कमण्डलु था । उन दिनों ब्रह्मचारी रहने के कारण मैं श्वेत वस्त्र में था । मैंने वस्त्र के दो टुकड़े कर दिये, एक टुकड़े को अपनी कमर में लपेट लिया और दूसरे को अपने कंधों में लपेट लिया । काशी की यात्रा में ग्रैंड ट्रंक रोड पर मैं अकेला चल रहा था । यह भादव (अगस्त-सितम्बर) का महीना था, इसलिए मौसम उमस भरा था । ज्यों-ज्यों पैर घिसटकर मैं चला, मैंने महसूस किया कि काशी तक की मेरी पैदल यात्रा माँ की मर्जी के विरुद्ध थी । रास्ते में मैं अस्वस्थ और दुर्बल हो गया । दो दिनों तक मेरे पास खाने को बिल्कुल कुछ नहीं था । कभी-कभी मैं यह सोचकर थोड़ा खिन्न हो जाता था कि माँ के आशीर्वादों के बावजूद मैं ऐसी दुर्दशा में हूँ । तीसरे दिन सुबह में रास्ते के किनारे के एक आम के वृक्ष के नीचे निःशक्त होकर थका-हारा मैं लेट गया । मैंने चुपचाप माँ से उनके आशीर्वाद के ऐसे परिणाम के बारे में शिकायत की । अपना दुखड़ा रोया । थोड़ी ही देर बाद उस पेड़ के नीचे एक कार आकर रुकी । पेड़ की छाया में भोजन करने के इरादे से एक परिवार उस कार से नीचे उतरा । उनमें या उनके क्रियाकलापों में बिना किसी प्रकार की रुचि लिये मैं पहले की भाँति लेटा रहा । अचानक मैंने एक परिचित आवाज सुनी : 'क्या यह सुज्जी महाराज तो नहीं हैं ? आप यहाँ कैसे आ गये ?' गर्दन ऊपर उठाने पर मैंने मठ में अक्सर आनेवाले एक भक्त का अतिपरिचित चेहरा देखा । जब उन्होंने सुना कि मेरा गन्तव्य स्थल काशी है तो उन्होंने कहा : 'हमारे साथ कार में बैठ जाइए । हमलोग मधुपुर जा रहे हैं । जहाँ तक हो सकेगा, हमलोग आपको अपने साथ ले जाएँगे ।' मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा : 'लेकिन मैंने सारी राह पैदल चलने का संकल्प लिया है । वहाँ पर उन्होंने अपने भोजन के लिए लाये सामानों में से

निकालकर सब से पहले कुछ पराठे, फल और मिठाइयाँ मेरे भोजन के लिए दीं तथा मेरा कमण्डल जल से भर दिया। उन्होंने जो दिया सो मैंने खाया परन्तु उनके आग्रहों के बावजूद न मैं उनकी कार पर सवार हुआ न उनके रुपये लिये। जब उन लोगों ने भी खा-पी लिया। तब वे लोग चले गये और मैंने अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ की। मुझे ऐसा लगा की मानो मैं अन्तहीन यात्रा कर रहा था। नंगे पाँव चलने के कारण मेरे पाँवों में फफोले पड़ गये थे तथा पूरे शरीर में दर्द हो रहा था। मैं अधिकतर रात में चलता था, क्योंकि दिन में चलना कष्टकर था। और तीन दिन बीत गये जिस दौरान मुझे खाने को केवल कुछ अमरूद मिले थे। तब मुझे ख्याल आया कि उन लोगों ने मुझे अपनी गाड़ी से अपने साथ कुछ दूर तक ले जाना चाहा था, परन्तु मैं राजी नहीं हुआ था। माँ ने कहा था : तुम 'इच्छापूर्वक और अनावश्यक रूप से कठोर साधना नहीं करना।' भक्त के अनुरोध को ठुकराकर मैंने माँ की अवज्ञा की थी, इसलिए मेरे कष्टों का यही कारण हो सकता है। जब मैंने लोगों से भिक्षा की याचना की तो लोगों ने मेरा मखौल उड़ाया। शायद उजले वस्त्र में आवृत रहना भी मुझे भिक्षा नहीं मिलने का दूसरा कारण रहा हो। फिर भी, प्रतिदिन मैं 20 मील चला करता था। इस प्रकार चलते हुए सातवें दिन की शाम को मैं बंगाल और बिहार की सीमा पर हजारीबाग के एक गाँव में पहुँचा।

उस गाँव का नाम बीरपुर था। बहुत ढूँढ़ने के उपरान्त मुझे एक शिव-मन्दिर मिला। जहाँ मैं रात्रि-विश्राम के लिए टिका। वह स्थान झुण्ड के झुण्ड मच्छड़ों की भीड़ से भरा था। मुझे स्पष्ट अनुभव हुआ कि यहाँ रात गुजारना असम्भव होगा। ज्यों ही मच्छड़ों को हाँकते हुए मैं वहाँ बैठा, एक बार फिर माँ के आशीर्वाद की शक्ति मेरे समक्ष प्रकट हुई। प्रायः ९ बजे रात में पुजारी, जो एक युवक था, पहुँचा। उसने मुझे नजदीक से देखा और मुझसे कुछ प्रश्न किये। फिर वह पूजा करने बैठ गया, और जब पूजा समाप्त हो गयी, उसने मुझे हिन्दी में कहा, 'मेरे साथ मेरे घर चलिए। यहाँ रात में भालू और दूसरे जानवर आ जाते हैं।' मैं 'नहीं' कहनेवाला ही था कि माँ की यह बात 'इच्छापूर्वक कठोर साधना नहीं करना' याद हो आयी। अतएव बिना विलम्ब किये मैं उसके साथ लग गया। मैंने देखा कि उसका एक अच्छा खासा खुशहाल परिवार था। उसकी विधवा माँ मुझे देखकर बहुत खुश थी। वह अपने उपासना-घर में पूजा आदि करने के लिए मुझे ले गयी। मैं वहाँ विभिन्न देवी-देवताओं के बीच श्रीरामकृष्ण के चित्र देखकर आश्चर्य चकित हो गया। मैं भावाभिभूत होकर वहाँ खड़ा रहा और मेरी आँखें अश्रुपूरित हो गयीं। बिहार और बंगाल की सीमा पर स्थित एक अज्ञात गाँव में वे (श्रीरामकृष्ण) कैसे रहने आ गये ? अपने हृदय में उमड़े आनन्द और श्रद्धा-विश्वास का वर्णन नहीं कर सकता। उस वृद्ध महिला ने अपनी स्नेहभरी देखरेख में मुझे तीन रातों तक रोक रखा। वह मेरे भोजन के लिए अपने हाथों से खिचड़ी, मालपुआ तथा अनेक वस्तुएँ बनातीं। उसने मेरे तलवों पर पड़े फफोलों पर मलहम लगाया तथा मेरे मोच पड़े पाँवों पर, दर्द मिटाने के लिए, हल्दी-चूना का लेप बनाकर, लगा दिया। तीन दिनों के बाद मुझे लगा कि मैं काफी चंगा हो गया हूँ और अब चलना शुरू कर सकता हूँ। फिर भी उस वृद्ध महिला ने आपत्ति की। उसने कहा, 'नहीं, मेरे बच्चे, तुम अब भी दुर्बल हो। तुम काशी तक की इतनी लम्बी दूरी की अकेले यात्रा तथा वहाँ तप साधना नहीं कर सकते। यह तुम्हारा रेल-टिकट है। तुम रेलगाड़ी से जाओगे।' इस बार भी माँ की बातों का स्मरण कर मेंने मना नहीं किया। उन लोगों ने टिकट दे रेलवे-स्टेशन पर ट्रेन में सवार होने में मेरी मदद की।

उस वृद्धा और उसके बेटे ने अपने पूजा गृह में ठाकुर के चित्र होने के पीछे की कहानी सुनायी। एक बार उस वृद्धा के बेटे ने काशी की यात्रा की थी। एक होमियोपैथिक दवा-विक्रेता की दुकान में लटके एक कैलेण्डर में ठाकुर का चित्र देखकर उसने वह कैलेण्डर माँग लिया तथा उसे ले आया। मैं सोचता हूँ, निश्चय ही यह एम. (महेश) भट्टाचार्य की दूकान रही होगी। उस लड़के ने दूकान पर ही जाना था कि यह चित्र श्रीरामकृष्ण'राम किशन शायद किसी बंगाली अवतार' –का था। माँ और बेटे दोनों ने कहा : 'फिर भी, घर में इस चित्र के लाने के बाद सब कुछ अधिक हितकर होने लगा।' जब मैंने बेटे से पूछा कि उसने चित्र क्यों माँगा तो उसने बताया : 'श्रीरामकृष्ण की आँखों में कुछ जादू जैसा लगा। उनकी आँखों ने अत्यन्त अप्रतिरोधक रूप से मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया, इसलिए मैंने यह चित्र माँग लिया। तदुपरान्त मैंने इस पर शीशा मढ़वा दिया।'

मैं ट्रेन से काशी पहुँचा। उस वृद्धा और उसके बेटे की इच्छा थी कि मैं कुछ दिन और उनके साथ रहूँ। किसी तरह चौथे दिन उनसे जुदा होने में मैं सफल हुआ। इससे वे बहुत उदास हो गये। मेरे काशी पहुँचने तक सब कुछ ठीक-ठाक रहा। तब मैंने महसूस किया कि मठ छोड़ने के बाद से माँ निरन्तर मेरे साथ थीं।

माँ ने कहा था : 'सेवाश्रम में ठहरना और प्रबल इच्छा होने पर तुम बाहर भोजन के लिए भिक्षा माँग सकते हो।' परन्तु तपस्या का आवेग मुझमें अत्यन्त तीव्र होने के कारण मैंने तपस्या की अवधि में बाहर ही व्यतीत करने का निर्णय लिया। यदि मैं सेवाश्रम में

ठहरता हूँ तो सुरक्षा का भाव मेरी तपस्या को प्रभावित करेगा । इसलिए मैंने बाहर ही ठहरने तथा भोजन के लिए भिक्षाटन पर निर्भर रहने का संकल्प लिया । मैंने गंगा के समीप एक पुराने उद्यान-भवन में एक उपयुक्त स्थल पा लिया तथा भोजन के लिए भिक्षा पर निर्भर रहते हुए अपना समय ध्यान, जप तथा तपस्या में गम्भीरता पूर्वक व्यतीत किया । वह स्थान स्वास्थ्यकर नहीं था । वह कीड़े-मकोड़ों तथा मच्छड़ों से ग्रस्त था। ये कीड़े-मकोड़े तथा मच्छड़ मुझे शान्ति से रहने नहीं देते थे । तब मैंने समझा कि माँ ने मुझे क्यों सेवाश्रम में रहने तथा 'तीव्र इच्छा होने पर' भिक्षाटन कर खाने का परामर्श दिया था । उत्तर भारत में दाल और चपाती भिक्षा में मिलती है जो मेरे लिए स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं थी । शीघ्र ही मैं अपने को बहुत दुर्बल और थका-मौदा महसूस करने लगा । मुझे अपने उत्साह में तेजी से कमी होती महसूस होने लगी । अपने धर्मोत्साह में प्राण डालने के लिए मैं पूज्यपाद लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) के पास गया जो गंगा नदी के तट पर एक घाट पर रहा करते थे । मुझे देखते ही उन्होंने बड़े स्नेह से पूछा : 'सुज्जी, तुम यहाँ कैसे आये हो ? इतने दुर्बल तुम क्यों दिखाई पड़ रहे हो ? मुझे लगता है, कि भिक्षाटन तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है । ये रुपये ले लो । मास्टर महाशय (श्री म) दूध के लिए प्रति माह ये रुपये मुझे भेजते हैं । ये दो रुपये ले लो और प्रतिदिन थोड़ा दूध लिया करो ।' चूँकि वे स्वयं कठोर तपस्साधना किया करते थे इसलिए रुपये स्वीकारने में मुझे कष्ट हुआ । तथापि, माँ का वचन 'जान बुझकर कठोर संयम नहीं बरतो' मेरे सामने फिर उपस्थित हो गया । अतएव, रुपये स्वीकारने के लिए मैं बाध्य हो गया । उनके प्रेम की इस अभिव्यक्ति ने मेरी आँखों में आँसू भर दिये ।

मेरे स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ, बल्कि और अधिक खराब हो गया । मुझे पेचिश हो गया था जो भिक्षान्न पर निर्भर रहने के कारण और बढ़ गया । एक दिन मेरी हालत इतनी खराब हो गयी थी कि मैं उद्यान-भवन में अकेले लेट गया । खाने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था और बार-बार दस्त हो रहा था । अचानक मैंने निकट में कुछ लोगों की आवाज सुनी । जिस मकान में मैं रहता था उसकी मालकिन ने मेरे घर में प्रवेश किया । कई वर्षों के बाद वे घर देखने आयी थीं । उस अवस्था में मुझे देखते ही सारी बातें स्पष्ट हो गयीं । शायद घर के रखवाले से मेरे विषय में सुन रखा हो । तुरन्त उन्होंने मेरे लिए एक अच्छा कमरा निर्धारित करने तथा मेरे भोजन के लिए चावल, सब्जी, दूध आदि समस्त आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने का आदेश दिया । इस बार भी मैं अस्वीकार करने वाला ही था परन्तु माँ के आदेशों का स्मरण कर मैंने सारी चीजें स्वीकार कर लीं । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वयं माँ ही उस महिला के रूप में आयी थीं तथा मेरे भोजन और विश्राम की व्यवस्था की थी ।

कुछ दिनों में मैं स्वस्थ हो गया । तब तक मैंने अनुभव कर लिया था कि तपस्या करने के बदले मैं दूसरों की सेवा ग्रहण कर रहा हूँ । श्री माँ के उपदेशों को ध्यान में रखकर अब मैंने सेवाश्रम में आश्रय लिया । इस प्रकार ६-७ महीने बीतने के बाद अपने छोटे से सामानों को बाँध कर मैं मठ लौटा जहाँ महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) एक पिता की भाँति चिन्ता-भाव से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे । मठ छोड़ने और तपस्या में निरत होने की मेरी लालसा का वही अन्त था ।

लौटने के उपरान्त मुझे पुनः महाराज की देख-भाल करने का दायित्व सौंपा गया । महापुरुष महाराज और बाबूराम महाराज भी मेरे लौटने की राह देख रहे थे । उनके प्रेम और स्नेह को शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता । माँ उस समय अपने गाँव (मायके) में थीं । मैंने उन्हें अपने सम्बन्ध में सारी सूचानाएँ देते हुए पत्र लिखा । यह जानकर कि मेरी तपस्या की लालसा पूर्ण हो चुकी थी तथा मैं सकुशल मठ लौट चुका था, माँ प्रसन्न हुईं तथा आशीर्वाद भरा एक पत्र मुझे भेजा । उन्होंने लिखा था : 'अब जबकि तुम बहुत सारी तपस्या के दौर से गुजर चुके हो अपने को मन-प्राणों से राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) की सेवा में समर्पित कर दो । केवल राखाल की सेवा करके ही तुम सब कुछ पा जाओगे । इससे बढ़कर कोई और तपस्या नहीं है, इसे ध्यान में रखो ।' जब माँ उद्बोधन में वापस लौटीं, मैं उनके पावन पाद-पदों में अपनी श्रद्धा अर्पित करने गया । माँ ने अपने आशीर्वाद मुझ पर उड़ेल दिये । उस वर्ष दुर्गा पूजा के समय में माँ मठ में आयीं और पूजा की अवधि वहीं व्यतीत की । पूरे पूजा की अवधि में मौसम आँधी- पानी से भरा था । परन्तु जीवित दुर्गा की उपस्थिति में सब कुछ सहज रूप में सम्पन्न हो गया । एक बार काली घाट में माँ काली के दर्शन की मुझे इच्छा हुई । जब मैंने यह बात बाबूराम महाराज से कहीं तो उन्होंने परामर्श दिया : 'पहले उद्बोधन में माँ के दर्शन करो, वे माँ काली की अवतार हैं । इसके बाद ही कालीघाट जाओ ।' मैं बाग बाजार स्थित माँ के आवास पर गया । माँ को प्रणाम निवेदित करने के उपरान्त मैंने बाबूराम महाराज के कथन को कह सुनाया । उन्होंने हल्के से मुस्कुरा दिया । उस मुस्कान में मैंने जो देखा, वह आज तक मेरी आँखों के आगे घूम रहा है । उस मुस्कान के दैवी एवं स्वर्गीय सौन्दर्य का वर्णन करना मेरी शक्ति के परे है । तब माँ ने कहा : 'मेरे बच्चे, बाबूराम ने सचमुच सही कहा है ।' □

जीवन की सीख

– श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ व मिशन, बेलुड़ मठ

[श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज की पुस्तक What Life Has Taught Me के ९वें अध्याय का डॉ० केदारनाथ लाभ द्वारा अनुवाद]

इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्णो के संग में

भारत सरकार ने सन् १९६० ई० में इण्डोनेशिया (हिन्देशिया) एवं एशिया के छः अन्य दक्षिण-पूर्वी देशों की मेरी व्यापक व्याख्यान यात्रा का आयोजन किया था । इण्डोनेशियन (हिन्देशियाई) भाषा ५०% से अधिक संस्कृत है; ८०% से अधिक आबादी धर्म से मुसलमान है परन्तु संस्कृति की दृष्टि से वे लोग हिन्दू हैं, यहाँ तक कि अधिकांश लोगों के नाम संस्कृत के हैं, जैसे, सुकार्णो, अर्जुनान्तो, पदमावती, वायु सेनाध्यक्ष सूर्यधर्म आदि; यहाँ तक कि उनकी कला और नाट्य-साहित्य भी मुख्यतः रामायण और महाभारत पर आधारित हैं । मैंने एक ट्रक देखा जिस पर 'रावण' नाम लिखा था । सुन्दर बाली द्वीप मुख्यतः हिन्दू है । हिन्देशिया यह दर्शाता है कि आप कोई भी धर्म अंगीकार कर सकते हैं परन्तु संस्कृति आपकी अपनी ही होनी चाहिए । संस्कृति का आयात नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्थानीय भूगोल, मौसम आदि पर निर्भर रहती है । भारत में हमें इसके दो उदाहरण दिखाई पड़ते हैं । प्रथम हैं स्वर्गीय न्यायमूर्ति एम. सी. छागला जिन्होंने अपने को धर्म से मुसलमान तथा संस्कृति की दृष्टि से हिन्दू घोषित किया था तथा दूसरे हैं मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० वी० एल० डि सूजा जिन्होंने अपने को धर्म से रोमन कैथोलिक तथा संस्कृति की दृष्टि से हिन्दू घोषित किया था ।

१९५० के दशक में, जब मैं रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली का प्रभारी था तब इण्डोनिशिया के राष्ट्रपति डॉ० अहमद सुकार्णो हमलोगों के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू से विचार-विमर्श के लिए नई दिल्ली आये थे । मैं इण्डोनिशिया के विकास-कार्यों में गहरी रुचि रखता आ रहा था इसलिए मैंने नई दिल्ली स्थित इण्डोनेशिया के दूतावास में जाकर राष्ट्रपति सुकार्णो से मिलने का निश्चय किया । जब मैं वहाँ गया तो दूतावास के एक कर्मचारी ने आकार मुझसे कहा कि राष्ट्रपति (सुकार्णो) दूतावास के कर्मचारियों को सम्बोधित कर रहे हैं अतः आपको प्रतीक्षा करनी होगी । परन्तु मैंने उस कर्मचारी से राष्ट्रपति को यह कहने को कहा कि रामकृष्ण मिशन के एक स्वामी आपसे मिलने आये हैं । सन्देश मिलते ही राष्ट्रपति सुकार्णो ने तुरन्त श्रोताओं से रुकने को कहा ताकि वे बाहर जा सकें तथा रामकृष्ण मिशन के एक सदस्य से दर्शक-भवन में मिल सकें । वे अपनी सैन्य-पोशाक में थे । हमलोगों ने एक दूसरे को गले लगाया और फिर हम बातचीत करने बैठ गये । मैंने स्वामी विवेकानन्द रचित कुछ पुस्तकें, भेंट की । उन्होंने मुझसे पूछा 'स्वामी विवेकानन्द रचित 'हिन्दू धर्म' की रक्षा के लिए (In Defence of Hinduism) नामक पुस्तक कहाँ है ?' मैंने उनसे कहा, 'यह पुस्तक जो मैंने आपको दी है, उसमें वह व्याख्यान भी संलग्न है।' और बाद में, मैंने उन्हें बेलुड़ मठ का एक चित्र दिखाया तथा उनसे कहा, 'गैंजेज के तट पर स्थित यह रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ का प्रधान कार्यालय है । उन्होंने तुरन्त मुझे संशोधित किया, 'गैंजेज नहीं कहिए, गंगा कहिए गंगा ।'

मैंने उनसे कहा कि मैं उनकी पत्नी से भी मिलना चाहता था । उन्होंने तुरन्त अपनी धर्मपत्नी को बुलाया। वे आयीं और हमलोगों की बगल में बैठ गयीं । मैंने उन्हें (सुकार्णो को) अपनी पुस्तक 'आवर वुमन' (हमारी नारियाँ) की एक प्रति अर्पित की । पुस्तक देखकर सुकार्णो ने कहा : 'वाह ! यह मेरी पत्नी के लिए है । विवेकानन्द पुरुषों का स्त्रियों पर हावी होना पसन्द नहीं करते थे ।'

जकार्ता (संस्कृत में जयकर्ता) में इण्डोनेशिया के भारतीय राजदूत श्री अपा. बी. पन्त के आमंत्रण पर भारत सरकार ने १९६३ ई० में स्वामी विवेकानन्द की जन्म-शताब्दी के सन्दर्भ में मेरी ८ दिवसीय व्याख्यान-यात्रा का आयोजन किया था । राजदूत ने मेरे लिए जकार्ता में छः और बाण्डुंग में दो व्याख्यानों का आयोजन किया था जिनमें दोनों नगरों के विश्वविद्यालयों में से प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक-एक व्याख्यान सम्मिलित था ।

जकार्ता के अँग्रेजी दैनिक समाचार पत्रों–दि इण्डोनेशियन हेराल्ड तथा दि इण्डोनेशियन ऑवजर्वर ने अपने २९ नवम्बर १९६३ के अंकों में मेरी यात्रा और समस्त कार्यक्रमों का पूर्ण विवरण प्रकाशित किया । पूर्वाह्न में राष्ट्रपति भवन में एक विशेष कार्यक्रम का

आयोजन हुआ । इसमें इण्डोनेशिया की भाषा में 'स्वर विवेकानन्द' (२०,००० प्रतियाँ) तथा अँग्रेजी में 'वॉयस ऑफ विवेकानन्द' (२,००० प्रतियाँ) शीर्षक से प्रकाशित विवेकानन्द जन्म-शताब्दी प्रकाशन का उपहार राष्ट्रपति सुकार्णो को प्रदान किया गया । यह पुस्तक राष्ट्रपति सुकार्णो को समर्पित है तथा इसमें उनके द्वारा निम्नलिखित प्रस्तावना प्रस्तुत की गयी है–

'स्वामी विवेकानन्द ! कैसा विलक्षण नाम है ! वे उन व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने मुझे इतनी प्रचुर प्रेरणा दी–सबल-सुदृढ़ होने की प्रेरणा, ईश्वर का उपासक होने की प्रेरणा, अपने राष्ट्र का सेवक होने की प्रेरणा, दीन-दुःखियों का सेवक होने की प्रेरणा, समग्र मानव जाति का सेवक होने की प्रेरणा ।

'यह वे ही थे जिन्होंने कहा था :' हमलोग बहुत रो चुके, अब और रोने की जरूरत नहीं है, बल्कि अपने पैरों पर खड़े हो और मनुष्य बनो !'

भारत के राजदूत के अनुरोध पर मैंने सर्वत्र मनुष्य के प्रति विवेकानन्द के प्रेम और रुचि विषय पर संक्षिप्त व्याख्यान दिया तथा विवेकानन्द के सन्देश के सार्वजनिक स्वरूप का विवेचन किया । तदुपरान्त एक कलात्मक बक्से में सुरुचिपूर्ण ढंग से पैक की गयी 'कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द' (विवेकानन्द-साहित्य) की एक सेट मैंने राष्ट्रपति सुकार्णो को भेंट की । तदनन्तर राष्ट्रपति ने अंग्रेजी में 'वॉयस ऑफ विवेकानन्द' तथा इण्डोनेशियाई भाषा में 'स्वर विवेकानन्द' नामक ग्रंथों का विमोचन किया तथा एक संक्षिप्त व्याख्यान दिया । अपने एक अनौपचारिक एवं आत्मीय उत्तर में इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कहा कि जब वे अपने देश और देशवासियों की किस प्रकार सेवा की जाय इस विषय पर गंभीरतापूर्वक चिन्तन कर रहे थे तब १९२७ में स्वामी विवेकानन्द की कृतियों से उनका प्रथम परिचय हुआ । इसके उपरान्त विवेकानन्द से उन्होंने जो प्रेरणा प्राप्त की तथा तब से उनके जीवन और कार्य में विवेकानन्द जो प्रेरक शक्ति बने रहे हैं, इसका उन्होंने वर्णन किया । इण्डोनेशिया के लोगों के लिए उनके कार्यों के पीछे दीनों और दलितों में ईश्वर दर्शन करने तथा ईश्वर के रूप में उनकी सेवा करने के विवेकानन्द के संदेश की प्रेरणा निहित थी । राष्ट्रपति ने जोर देकर कहा कि उनके लोगों के लिए पंचशील कार्यक्रम लागू करने के पीछे स्वामी विवेकानन्द का अद्वैत दर्शन कार्य कर रहा था । उन्होंने आगे कहा कि विवेकानन्द केवल भारत के ही नहीं थे, बल्कि सारे विश्व के भी थे । उन्होंने अपने व्याख्यान के समापन में कहा कि स्वामीजी की पुस्तकों को वे अपने शयन कक्ष में रखते हैं तथा हर रात सोने के लिए जाने से पहले उन्हें पढ़ते हैं । राष्ट्रपति ने स्वामीजी की पुस्तकों की अपनी प्रतियाँ डच द्वारा की गयी सैन्य कारवाई के दौरान खो दी । उस समय, प्रधानमंत्री, जवाहर लाल नेहरू तथा रामकृष्ण मिशन ने इन पुस्तकों का एक सेट (समूह) उन्हें भेज दिया था ।

मूल रूप से यह कार्यक्रम केवल बीस मिनटों के लिए निर्धारित था परन्तु कार्यक्रम पूरे एक घंटे तक चलता रहा । उसी संध्या को यह कार्यक्रम दूरदर्शन पर दिखाया गया तथा इसे आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किया गया । उसी संध्या को मैंने गाँधी मेमोरियल स्कूल में एक जनसभा को सम्बोधित किया । २०० से अधिक लब्ध प्रतिष्ठ श्रोताओं ने **'विज्ञान और धर्म'** विषय पर मेर व्याख्यान को गहन रुचि के साथ सुना ।

जकार्ता और बाण्डुंग में स्वतंत्र संगठनों तथा सरकार द्वारा आयोजित अनेक सभाओं में मैंने अनेक व्याख्यान दिये । पश्चिमी जावा के इण्डोनेशियन नेशनल यूथ फ्रंट (इण्डोनेशियाई राष्ट्रीय युवा मोर्चा) के समाज कल्याण विभाग द्वारा आयोजित गोष्ठी में ४०० से अधिक सर्वदेशीय श्रोताओं ने 'स्वामी विवेकानन्द का आध्यात्मिक सन्देश' विषय पर मेरा व्याख्यान सुना । पश्चिमी जावा प्रदेश के सैनिक गवर्नर कर्नल महमुदी ने बाण्डुंग में मेरा स्वागत किया । वे 'विवेकानन्द साहित्य' का एक सेट पाने के लिए बड़े उत्सुक थे । मैंने उन्हें वह सेट भेज देने का वचन दिया । उन्होंने यह अशा भी व्यक्त की की अपनी दूसरी यात्रा के दौरान मैं लोक सेवा कर्मिकों को सम्बोधित करूँ और उन्हें समर्पित भाव से सेवा करने के विवेकानन्द के सन्देश को उन तक पहुँचाऊँ । इसके उपरान्त विश्वविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज में 'युवकों को स्वामी विवेकानन्द का आध्यात्मिक सन्देश' विषय पर मेरा व्याख्यान हुआ । श्रोताओं ने अत्यन्त तीव्र ध्यान से व्याख्यान को सुना । बाद में मैने जकार्ता विश्वविद्यालय को युनिवर्सिटी लेक्चर हॉल में सम्बोधित किया जहाँ एक हजार से अधिक छात्रों ओर प्रोफेसरों ने हर सीट को भर दिया था । अनेक व्यक्ति हॉल तथा बरामदे में खड़े थे । मेरे व्याख्यान का विषय था 'स्वामी विवेकानन्द का धर्म और विज्ञान का समन्वय ।' इसके बाद इण्डोनेशिया के दूरदर्शन द्वारा मेरे साक्षात्कार की रिकार्डिंग की गयी ।

भारत के राजदूत ने मुझे बताया कि इण्डोनेशिया सरकार के सूचना मंत्रालय ने रेडियो इण्डोनेशिया (इण्डोनेशिया की आकाशवाणी) को मेरे द्वारा दिये गये सारे व्याख्यानों को प्रसारित करने का आदेश दिया था । जकार्ता और बाण्डुंग के अंग्रेजी और इण्डोनेशियाई भाषा में प्रकाशित दैनिक समाचार पत्रों ने मेरे विभिन्न व्याख्यानों के संवाद प्रकाशित किये थे । ❑

मानसिक तनाव के बारे में कुछ अभिमत

–स्वामी गोकुलानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, दिल्ली

हमारे समक्ष प्रायः एक प्रश्न उपस्थित होता है–क्या सभी धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग अपने जीवन से सन्तुष्ट हैं ? तात्पर्य यह, जिन लोगों ने दीक्षा ग्रहण की है अथवा नियमबद्ध अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं, क्या उन्होंने मानसिक तनाव पर नियंत्रण कायम कर लिया है ? क्या यह बात सही नहीं है कि वास्तव में जो लोग ध्यान् का अभ्यास करते हैं वे भी यदाकदा मानसिक तनाव ग्रस्त हो जाते हैं ?

उदाहरणार्थ, मानो कोई व्यक्ति मंदिर अथवा पूजागृह में विशिष्ट मनोदशा में बैठा है और कोई अनायास उनके पास आकर कुछ कहे तो वह उग्र स्वर में कह उठता है, 'मुझे परेशान मत करो, मैं अभी ध्यान कर रहा हूँ ।' यदि आप वास्तव में ध्यानावस्थित हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपने इष्ट के साथ युक्त हैं । यदि कोई व्यक्ति पूजागृह से लौट रहा है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसमें बदलाव आया है । पूजा गृह से लौटकर आने के बाद उसके व्यवहार में मृदुता एवं प्रियता की आशा की जानी चाहिए । इसके विपरीत सामान्य अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि ध्यान योग करने के उपरान्त भी लोग उग्रता वमन करते पाए जाते हैं । स्पष्ट है कि ऐसे लोग धार्मिक अनुशासन का पालन नहीं करते । इस प्रकरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि सही ढंग से धार्मिक जीवन का अनुसरण किया जाए तो लोग अवश्य ही शान्त एवं आत्म सन्तुष्ट बनेंगे ।

वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति के सान्निध्य में आने पर कोई भी उसके द्वारा प्रसारित शान्त तरंगों की अनुभूति कर सकता है । हम कहेंगे, 'यह साधु पुरुष कितना शान्त एवं संगृहीत है । इनमें मानसिक उथल-पुथल लेश मात्र भी नहीं है ।' किन्तु यदि हम ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आते हैं जो विभिन्न मानसिक प्रक्षोभों का शिकार हैं तो हम भी प्रक्षोभक तरंगों से आप्लावित होंगे । तात्पर्य यह है कि भले ही हमें आन्तरिक सत्य की वास्तविक अनुभूति न हुई हो फिर भी ध्यान करने पर उसकी एक झलक तो मिल ही जाती है और यह क्रिया मात्र हमें मानसिक तनाव परे आधिपत्य कराने में सक्षम है । रामकृष्ण मिशन का प्रतीक चिन्ह जो कि स्वामी विवेकानन्द की संकल्पना है, उसमें योग की चारों विधाओं का सामंजस्यपूर्ण समायोजन है । यूंगतो केवल नरीय तथा नारीय गुण कर्मपरायणता तथा ध्यानपरायणता के

अब हमें गौर करना है कि कार्ल गुस्तव यूंग जो कि ख्याति प्राप्त मनो-विश्लेषक हैं उन्हें मानसिक तनाव संदर्भ में क्या कहना है ? यूंग की अवधारणा है कि मानसिक तनाव मनुष्य के स्वभाव में नर एवं मादा दोनों के गुण-विशेषों का प्रतिफल है । उनके कहने का तात्पर्य है–नर-अर्थात बहिर्मुखी, मादा-अर्थात् अंतर्मुख प्रवृत्ति । इस संसार में हमें ऐसे लोग मिलेंगे जो स्वभाव से बहिर्मुखी हैं । उनकी प्रवृत्ति सर्वदा बाहर की ओर जाने की होती है और वे आंतरिक जीवन शैली से अनभिज्ञ होते हैं । इसके विपरीत अन्य अंतर्मुखी हैं । यूंग के अनुसार तनाव इन दो विरोधी प्रवृत्तियों-बहिर्मुखी एवं अंतर्मुखी-का एक व्यक्ति विशेष में परस्पर विपरीत दिशाओं में कार्यरत होने से उत्पन्न होता है । प्रश्न उठता है–इस तनाव का उपचार क्या है ?

समस्या का निराकारण इन दोनों मूलभूत प्रवृत्तियों के समन्वय से ही संभव प्रतीत होता है । यह समन्वय ध्यान परायण, चिंतन और क्रिया प्रधान व्यवहार के आपसी सामंजस्य से ही संभव है । चिन्तन शून्य तथा अन्तर्निरीक्षणहीन जीवन व्यवहार घातक सिद्ध हो सकता है लेकिन अकेले सतत् चिन्तनशील बने रहने और सक्षम गुरु के निर्देशन के अभाव में व्यक्ति सही मार्ग अपनाने में अक्षम बना रह सकता है । और उचित सीखने की प्रक्रिया के अभाव में मानसिक तनाव का कोपभाजन हो सकता है । हमें दोनों प्रकार की अति से बचना चाहिए और सही मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए । क्रियाशील व्यवहार के साथ-साथ व्यक्ति को चिन्तन, अंतरावलोकन तथा आत्मनिरीक्षण के लिए भी समय निकालना चाहिए । इन दोनों स्वभावगत विरोधी प्रवृत्तियों के सही समीकरण से अथवा दूसरे शब्दों में नारीय अथवा नारीय गुण-विशेषों के सामंजस्य से मानसिक तनाव से मुक्ति मिल सकती है । इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न वर्ग के लोगों का अवलोकन करें– सम्पत्तिवान् लोग, शक्तिवान्, पद व गरिमा के धनी लोग तथा ऐसे ही अन्य लोग । लेकिन यदि हम उनके वास्तविक जीवन में झांककर देखें तो हमें यह देखकर हैरानी होगी कि वे धनाढ्य शक्तिशाली होते हुए भी कलह ग्रस्त रहते हैं और जीवन के उच्चतर आयाम से वंचित हैं । व्यक्तियों को जब तक आंतरिक शान्ति नहीं मिलती वे कभी भी मानसिक तनाव से मुक्त नहीं रह सकते ।

सामंजस्य पर जोर दिया किन्तु स्वामी विवेकानन्द ने एक सच्चे योगी की भाँति ऋषि पुरुषों की परम्परागत अवधारणाओं को लेकर चारों योगों का दृष्टिगोचर समन्वय किया है ।

जो लोग रामकृष्ण मिशन के प्रतीक चिन्ह से परिचित हैं और जिन्होंने इस प्रतीक के अभिप्राय का गहराई से चिंतन एवं विश्लेषण किया है, उन्हें यह भली भाँति विदित है कि इस प्रतीक के केन्द्र स्थल में कमल है जो भक्ति का प्रतीक है, उदीयमान सूर्य ज्ञान अथवा प्रज्ञान का, सर्पाकृति राजयोग की सूचक है तथा लहरें कर्मसूचक हैं । इसके साथ मध्य में राजहंस प्रदर्शित किया गया है तथा लहरें कर्मसूचक हैं । राजहंस परमात्मा अथवा हमारी दिव्यात्मा का प्रतीक है । धारणा यह है कि राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग के सामंजस्य से हम अपनी अन्तरात्मा यानी परमात्मा की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं । स्वामी विवेकानन्द ने इस सामंजस्य को समन्वय योग की संज्ञा इसलिए प्रदान की है क्योंकि आधुनिक जीवन व्यस्तता से परिपूर्ण है । अतः दैनिक क्रिया प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व हमें कम से कम पन्द्रह मिनट समन्वय योग का अभ्यास करना चाहिए । इस दैनिक योग क्रिया के सम्पन्न होने के बाद यदि हम दैनिक जीवन क्रियाओं में प्रवृत्त होंगे तो हमारी मनोदशा स्थिर बनी रहेगी ।

उदाहरणार्थ : मानो कोई अधिकारी अथवा कर्मचारी है, या डॉक्टर या प्रोफेसर या गृहिणी अथवा और कुछ है । हम दीक्षित न भी हों तो भी सुबह कुछ समय हम आत्मनिरीक्षण कर सकते हैं । इस प्रकार जब हम मन पर नियंत्रण करने का प्रयास करते हैं तो यह राजयोग है । हमें ज्ञात है कि व्यक्ति सीमाबद्ध है फिर भी उसके भीतर दिव्य प्रकाश की चिंनगारी तो है ही । मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक नियंत्रण के नियमित अभ्यास के माध्यम से हम इस दिव्यत्व से एकरूप हो सकते है । तात्पर्य यह है कि हम तव राजयोग कर रहे हैं ।

जब हम अपने काम में लग जाते हैं, जैसे गृहिणी का गृह कार्य में व्यस्त होना, तो हमें उस कार्य में आनंद की अनुभूति होने लगती है । यदि हमें अपने क़ार्य में रुचि नहीं है और उसमें प्रसन्नता नहीं मिलती तो वह कार्य सरस नहीं अपितु नीरस लगता है । जो व्यक्ति अपने काम में प्रेम से लगा रहता है उसे भक्तियोग कहा जा सकता है । भले ही हम पुष्पमाला नैवेद्य लेकर एक सामान्य सेवक की भाँति मंदिर में न जाएँ किन्तु यदि हमारे हृदय में भक्ति भावनायुक्त दृष्टिकोण है तो कोई भी कार्य करें उसे प्रेम व भक्ति से कर पाएँगे—यही भक्तियोग है । श्रद्धापूर्वक कार्य संपादन करने की क्रिया भक्तियोग ही है ।

हमारे दैनिक जीवन में भिन्न-भिन्न लोगों से सम्पर्क होता है—परिवारों से, मित्रों से, सहकर्मियों से, प्राध्यापक का छात्रों से, डॉक्टर का मरीजों से सम्पर्क होता है—परिवारों से, मित्रों से, इनमें भाव हो—कि सब में वही एक परमात्मा है—तो हम शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय तत्त्व विवेक कर रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति में शाश्वत तत्व विद्यमान है इस प्रकार हम मनुष्य के दिव्य स्वरूप को स्वीकार करते हैं । इंसान के लिए तो यह आत्मा है किन्तु सर्वव्यापी दृष्टि से यह ब्रह्म है । इस प्रकार हम विवेक का अभ्यास करते हैं जिसे ज्ञानयोग की संज्ञा दी गई है ।

जब भी हम कोई काम बिना किसी उद्देश्य पूर्ति के निमित्त करते हैं-कार्य मात्र कार्य हेतु-तो वह कर्मयोग है। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही कहा, हम भले ही सैकड़ों काम करें किन्तु उन कामों से मानस पटल पर एक भी तरंग नहीं उठनी चाहिए । हमें फलासक्ति रहित भाव से सब कुछ करना चाहिए ।

इस प्रकार हम दैनिक जीवन में योग की चारों विधियों को जीवन में चरितार्थ कर सकते हैं । इसे समन्वय योग कहा जाएगा । दैनिक कार्य-क्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व हम राज-योग विद्या का परिपालन कर सकते हैं । भक्ति भावना से प्रेरित कर्म-संपादन कर हम भक्तियोग की दृष्टि अर्जित कर सकते हैं । कार्य संपादन करते समय अपने सहयोगियों के साथ विवेकसम्मत व्यवहार द्वारा ज्ञान योगी बन सकते हैं और अंत में सभी कर्म कर्तव्यों को, जो हमारे लिए निर्धारित हैं कर्म योगी की भावना से निष्पादित कर सकते हैं ।

जब तक वृत्तियों की ओर हम उपर्युक्त दृष्टिकोण नहीं अपनाएँगे, तो जो भी घटनाएँ घटेंगी, उनमें हमारी प्रतिक्रिया प्रतिकूल ही रहेगी । उदाहरण के तौर पर, यदि कोई कनिष्ठ कार्यकर्ता किसी का अपमान करता है, तो वह सामान्यतः जैसे को तैसा व्यवहार का अनुसरण करेगा । इसके विपरीत यदि वह आध्यात्मिक धरातल पर सबको समान मानता है तो वह अपने अधीनस्थ कर्मचारी में भी दिव्य सवरूप का दर्शन करेगा । यह तभी संभव है जबकि वह निर्भयतापूर्ण आत्म-विश्लेषण करने में समर्थ हो । यह ज्ञान योग है। समन्वय योग के अभ्यर्थी को निरंतर यह परीक्षण करना पड़ता है कि वह सही व स्थिर बुद्धि के निर्णयानुसार व्यवहार कर रहा है या नहीं ।

पिछली चर्चाओं में हमने मानसिक तनावों के कारणों की जानकारी पर अधिक महत्त्व दिया है । तनावों का

सामना करने के लिए हम अनेक उपायों का सहारा लेते हैं लेकिन ये उपाय अधिकांश ऊपरी लय के ही सिद्ध होते हैं। यह उपचार उसी श्रेणी का है जिस प्रकार केवल रोग के बाह्य लक्षणों को देखकर औषधि दे दी जाए तथा रोग के भीतरी कारणों को, जो बाह्य रूप में प्रकट नहीं हो रहे हैं उन्हें नजरअंदाज कर दिया जाए।

माना कि एक व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रस्त है और व्याकुल हो रहा है। यदि वह धूम्रपान करता है तो वह अपने मानसिक तनाव को धूएँ में उड़ाने का प्रयास करेगा, अन्य कोई मादक द्रव्य लेकर, एस्प्रीन अथवा नींद की गोलियाँ खाकर या फिर दूरदर्शन के कार्यक्रमों को देखकर अथवा सैर-सपाटे के लिए निकलकर या विश्रामावकाश लेकर अपना मन हल्का करने का प्रयास करेगा। अपने-अपने तरीके से कार्यक्रम बनाकर ये लोग अपना तनाव हल्का करने का प्रयास तो अवश्य करते हैं लेकिन तनाव व मानसिक दबाव दूर करने में उन्हें किंचित मात्र भी सफलता नहीं मिल पाती है।

मैं इस तथ्य को पुनः दोहराता हूँ कि स्नायुतंत्रीय तनाव एक तरह की शारीरिक मानसिक विकृति है। इस बात को लेकर आम सहमति है कि अधिकतर रोग शारीरिक मानसिक विकृति के कारण ही होते हैं। और इनका कुप्रभाव हमारे विचारों, हमारे विश्वासों, हमारे पूर्वाग्रहों तथा हमारे वातावरण पर पड़ता है और इस कुप्रभाव के वशीभूत होकर हम विभिन्न परिस्थितियों में कैसा-कैसा आचरण करते हैं। इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाला जा सकता कि अल्सर, सिर दर्द के लक्षण केवल काल्पनिक हैं। वास्तव में अभिप्राय यह नहीं है।

मानो किसी व्यक्ति को सिर दर्द हो रहा है और मैं उससे यह कहूँ कि तुम दर्द दूर करने की गोलियाँ क्यों ले रहे हो ? तुम्हारा सिर दर्द केवल काल्पनिक है। इस प्रकार की टिप्पणी बड़ी अनुदार टिप्पणी होगी क्योंकि यदि कोई व्यक्ति बीमारी की शिकायत करे तो उसके कथन के बारे में विश्वास करना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि उसका दर्द काल्पनिक है।

मूल समस्या यह है कि सिर दर्द क्यों है ? और उसका कोई कारण होना चाहिए। अनेक प्रकार के रोग वास्तव में रोग हैं। इन रोगों को मनोशारीरिक विकृति की संज्ञा देना केवल इस तथ्य को स्वीकार करना है कि रोगों का मूल कारण भावात्मक दबाव व तनाव है। इनसे शायद ही कोई मुक्त हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किस प्रकार हम वातावरणीय परिस्थितियों से जूझते हैं, उनके परिणामस्वरूप हमारे अंदर मनोवैज्ञानिक परिवर्तन प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और वह बाह्य रूप में शारीरिक रोगों के रूप में प्रस्फुटित हो जाती है।

इन रोगों का प्रतिमान अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति क्रोध का शिकार है। साधारणतया वह क्रोध को व्यक्त करने की बजाय क्रोध को दबाने का प्रयत्न करता है इससे मानसिक तनाव हो जाता है। मानसिक तनाव के प्रतिफल के रूप में व्यक्ति को मानसिक विषाद अथवा भयंकर सिर दर्द होता है। सिद्धान्त एक ही है। यह मूलाधार सिद्धान्त क्या है ? इसको हमें सावधानी से परखना होगा। हम अपने जीवन में विभिन्न भावातिरेकों के वशीभूत होकर व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरूप हम अनेक भावनाओं के दबाव या दमन के भाजन हो जाते हैं। भावनाओं का दबाव हमारे नियोजित शारीरिक रचना को अंततोगत्वा अव्यवस्थित कर डालता है।

इसका उत्कृष्ट उदाहरण पेपटिक अल्सर (उदरशूल) है। इसका स्नायविक तनाव से निकट संबंध तो है लेकिन अल्सर का मूलभूत कारण व्यक्ति द्वारा अपनी चिन्ताओं को बृहद् आकार देना है। और साथ-साथ भय व आक्रोश को व्यक्त करने में संकोच करना भी है। कुछ दिन पहले एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, स्वामीजी। मुझे कैंसर की संभावना का भय आतंकित कर रहा है। विवेक के क्षणों में विचार करने पर मुझे लगता है कि मैं स्वस्थ हूँ, ठीक हूँ किन्तु फिर भी यह विचार कि मैं कैंसर रोग से ग्रसित हूँ मेरे मन को नहीं छोड़ता। इस भय से मुक्ति का मैं कोई उपाय नहीं ढूँढ़ पा रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति का प्रायः सामना करना पड़ता है कि हम कठिन प्रतिस्पर्धा में संलग्न हो जाते हैं अथवा चिन्ताओं की अति हो जाती है। आहार ग्रहण करने में बुरी आदतें-जैसे भोजन करते समय तनावग्रस्त होना अथवा जल्दी-जल्दी निगल जाना, पाचन क्रिया में अधिक अमल स्राव करेगा जो कि पेपटिक अल्सर कर सकता है। इस रोग से बचने के लिए भावनाओं के दबाव का उपचार अधिक युक्तिसंगत है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिस तनाव से व्यक्ति आतंकित हो उसका सूझबूझ के साथ समाधान करना चाहिए। यदि तनाव पर काबू पा लिया जाए तो अल्सर से भी बचाव हो सकता है। अतः रोगी के व्यक्तिगत, ऐतिहासिक घटनाक्रम पर ध्यान देना आवश्यक है। जिसके द्वारा हम उसकी शारीरिक व मानसिक विकृतियों की शुरुआत को उसके भावनात्मक दबावों के संदर्भ में देख सकें। पेपटिक अल्सर का उदाहरण विभिन्न मनो-दैहिक विकृतियों में से एक है। ऐसे अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनको एक प्रकार से स्नायुगत जानो-कमर में दर्द अथवा छाती में पीड़ा आदि भी मनो-दैहिक विकृति हो सकती है। यह

पूर्वानुमान करना मुश्किल है कि तनाव से शरीर के एक अवयव दूसरे अवयव से अधिक पीड़ित होते हैं । लेकिन मनोदैहिक विकृति संबंधित रोगों की जड़ में स्नायुतंत्रीय तनाव ही है जब कि किसी भी अवयव संरचना में रोग लक्षण उत्पन्न हों ।

आधुनिक अनुसंधान ने इस तथ्य को उजागर करना शुरू किया है कि स्नायविक तनाव का कार्डियो वेस्कूलर रोग (सीवीडी) से सीधा संबंध है । नवीनतम आंकड़ों के अनुसार दिल का दौरा हृदय रोग से अधिक लोगों की मृत्यु का प्रमुख कारण स्नायुतंत्रीय तनाव ही है । इस क्षेत्र में डॉ० मेयर फायरमैन और डॉ० रे रोजेनमैन ने अपनी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'टाइप ए बिहेवियर एण्ड योर फियर' (ए श्रेणी व्यक्ति का व्यवहार और उसका भय) में स्नायुतंत्रीय तनाव और सीवीडी के मध्य संबंध का स्पष्ट उल्लेख किया है । इस कृति में उन्होंने 'ए' श्रेणी लक्षण युक्त व्यक्ति समूह का जिक्र किया है जो दिल के रोगों के प्रति सहज प्रवृत्त हो जाते हैं । लेखक द्वय ने ऐसे व्यक्तित्व के लोगों को 'ए' श्रेणी नाम से संबोधित किया है । इसके विपरीत उन लोगों को जो 'ए' प्रकार के लोगों की तरह हृदय रोगों की ओर आसानी से अभिमुख नहीं होते 'बी' श्रेणी के अन्तर्गत रखा है ।

'ए' श्रेणी के समूह के अन्तर्गत आने वाले लोगों के व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता यह है कि ऐसे व्यक्ति उपलब्धि प्राप्त हेतु सतत दबाव में रहते हैं । उनके मन में सदा एक ही विचार बना रहता है कि केवल वे ही अमुक कार्य को सम्पन्न कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं, इसी कारणवश वे तनाव में रहते हैं । ऐसा व्यक्ति जो काम को निपटाने का दबाव महसूस करता है वह सभी काम निपटाने की जल्दबाजी में रहता है । ऐसे व्यक्ति में अधीरता, खैंचतानी युक्त आकांक्षा, अविराम स्पर्धा की कामना, आक्रामक रुख और वैमनस्य जैसी चारित्रिक विषमताएँ भी होती हैं । उसे समय का अभाव खटकता है ओर उसे दिन के चौबीस घंटे भी अपर्याप्त लगते हैं । उनमें यह भाव बना ही रहता है कि उन्हें अभी बहुत कुछ करना है । इस प्रकार कार्यों को भरमार से लदे रहकर वे अपने लिए स्वयं मानसिक समस्याओं तथा स्वास्थ्य के लिए संकट मोल लेते हैं ।

दूसरी ओर 'बी' श्रेणी के लोग शांत एवं तनाव रहित बने रहते हैं और समय के विरुद्ध संघर्ष की प्रवृत्ति से परे रहते हैं वे आक्रोश को पनाह नहीं देते । उन्हें यह ज्ञात है कि कब विश्राम लेना है और अपने को कैसे प्रसन्नचित रखना है ? आंकड़े इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि वे सीवीडी के खतरे से बचे रहते है ।

'ए' प्रकार के लोगों के प्रति साधारणतया यह धारणा है कि वे 'बी' प्रकार के लोगों की तुलना में जो भावातिरेक से मुक्त हैं और अपना काम शान्त-प्रशान्त ढंग से करते हैं वे अधिक मात्रा में कार्य सम्पन्न करते हैं । लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि अपनी शक्ति को आवश्यक मानसिक दबाव में व्यय करने के कारण बाकी उपलब्धि कम ही होती है । 'बी' प्रकार के लोग चुपचाप व शान्त तरीके से काम करते हुए प्रभावी परिणाम देने में समर्थ होते हैं । कार्यकारी प्रवन्धन अधिकारी 'ए' प्रकार के व्यक्ति का बहुत ही उपयुक्त उदाहरण है । उसके व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओं का उल्लेख पूर्व में हो चुका है । उसका विस्तृत वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं । उसकी यह भावना रहती है कि विरोध की स्थिति में भी शीघ्रतिशीघ्र कार्य को सम्पन्न करना है । अतः कम से कम समय में अधिक से अधिक काम को निपटाने की मंशा के कारण वह अधिकतर तनाव की स्थिति में रहता है ।

संक्षेप में 'ए' प्रकार के व्यक्ति की यह धारणा होती है कि उन्हें दक्ष बने रहना है और दूसरों के सामने अपनी दक्षता को प्रमाणित भी करना है । यदि लक्ष्यपूर्ति की अवधि पाँच वर्ष निर्धारित की गई है तो अपने मालिक से प्रशंसा प्राप्त करने की मंशा से वे समयावधि से कुछ महीनों पूर्व ही कार्य को सम्पन्न करने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करेंगे । चूँकि ऐसे व्यक्तियों में असीम अभिलाषा एक आक्रमकता का वैशिष्ट्य होता हैं वे प्रायः कर्म निष्पादन प्रवृत्ति की ओर ही अभिमुख रहते हैं । वे अवकाशकाल में अपने निजी समय में आत्मविश्लेषण नहीं कर पाते । यदि उन्हें काम न करने के लिए कहा जाय तो वे सम्भवतः पागल हो जायेंगे । वे बातचीत विस्तृत रूप में करते है अतः वे क्या कह रहे हैं इस पर अपना नियंत्रण खो बैठते हैं । उनका ध्यान केवल कार्य पर केन्द्रित रहता है अतः जीवन की सुन्दर कृतियों को देखने रसास्वदन करने में वे असमर्थ हैं । हम इन्हें सतत् तनावयुक्त व्यक्ति कह सकते हैं ।

डॉ० फ्रायडमेन एवं डॉ० रोजनमेन ने 'ए' और 'बी' श्रेणी के व्यक्तियों का वर्गीकरण करते हुए पहले प्रकार के लोगों की चारित्रिक विशेषताओं का एक चार्ट तैयार किया जिसका वर्णन निम्नानुसार है । पहले प्रकार यानि 'ए' श्रेणी में हम पाते हैं–

१. जल्दी-जल्दी बोलने का ढंग ।
२. खाते वक्त द्रुतगति हरकतें करना ।
३. स्पष्ट अधीरता का प्रदर्शन ।
४. समयभाव की दीर्घकालीन संवेदना ।

५. अनेक कार्यों पर विचार और उनका संपादन तत्काल करना।

६. बातचीत करते समय अभिभावी होने की सक्रिय चेष्टा, वैचारिक विषय निर्धारण करना तथा जब अन्य लोग अपने विचार प्रकट कर रहे हों तब अपने ही विचारों में खोए रहना।

७. अवकाशकाल में जब कुछ काम न कर रहे हों तब एक अस्पष्ट आपराधिक अनुभूति करना।

८. पाने योग्य पदार्थों से अत्यधिक लगाव होना किन्तु स्वयं को गुणी बनाने के लिए समय न निकाल पाना। दूसरे शब्दों में उनका इस बारे में अधिक चिन्तित रहना कि लोगों से काम कैसे निकालें, लेकिन इस बात पर लेश मात्र भी विचार नहीं करते कि वे अच्छे इंसान कैसे बनें। इनकी एक मात्र चिन्ता काम निकालने की होती है, लोगों के प्रति उनमें करुणा नहीं होती।

९. वे भावभंगिमा का अंग विक्षेपों द्वारा प्रदर्शन करते हैं–मुट्ठी तानना, दांत पीसना इत्यादि।

उक्त विशेषताएँ उस व्यक्तित्व विशेष की हैं जो हृदय रोग की ओर प्रवृत्त होते हैं। इसके विपरीत ८ प्रकार के व्यक्तित्व विशेष लोगों की विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

१. समय-शीघ्रता की व्याकुलता नहीं होती।

२. अपने उपलब्धियों व कीर्तिमानों का बखान करने की आवश्यकता तब तक नहीं समझते जब तक कि ऐसी परिस्थिति अनिवार्य रूप से उपस्थित नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति इसकी जानकारी चाहता है तो 'बी' श्रेणी के व्यक्ति अपनी उपलब्धियों के बारे में अवश्य बात करते हैं लेकिन वे अपनी सफलताओं का ढिंढोरा नहीं पीटते और न ही गर्वोक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं।

३. उनका विश्वास है कि क्रीडा केवल मनोरंजन व विश्राम के लिए है अपनी उच्चता का प्रदर्शन करने के लिए नहीं।

४. वे अपराधहीनता से परे होकर शैथिल्य स्वीकारते हैं।

५. वे मानसिक व तनावरहित अपना कार्य निष्पादन करते हैं।

'ए' वर्ग के व्यक्तिविशेष लोग प्रायः यह दावा करते हैं कि वे वास्तव में कर्मयोगी हैं लेकिन उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि कर्मयोगी प्रत्येक कार्य को शान्ति और संयम से करता है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, 'हम जितने अधिक शान्त रहेंगे, उसी अनुपात में हमारी स्नायविक कोशिकाएँ विचलित नहीं होंगी। हम जितना अधिक प्रेम से रहेंगे, हमारा काम भी उसी के अनुरूप अच्छा होगा।

❑

मनुष्य दुःखी क्यों है? इसलिए कि वह दास है, नियमों से जकड़ा, प्रकृति की कठपुतली और खिलौनों की भाँति इधर से उधर लुढ़का दिया जानेवाला है। जिस शरीर को कोई भी वस्तु चूर्ण कर दे सकती है, उसी शरीर की चिन्ता हम निरन्तर करते रहते हैं, और इसी कारण हम निरन्तर भय की स्थिति में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। मैंने पढ़ा है कि मृग को भयभीत होते रहने के कारण प्रतिदिन ६०-७० मील की दौड़ लगानी पड़ती है। परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि हम मृग से भी गयी-बीती स्थिति में हैं। मृग को तो कुछ आराम मिलता भी है, पर हमें आराम कहाँ? यदि मृग को पर्याप्त घास मिल जाती है, तो वह सन्तुष्ट हो जाता है, पर हम तो अपनी आवश्यकताएँ सदा बढ़ाते ही रहते हैं। अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाने की हमारी प्रवृत्ति एक रुग्ण प्रवृत्ति है। हम ऐसे विक्षिप्त और अस्वाभाविक बन गये हैं कि हमें किसी भी स्वाभाविक वस्तु से सन्तोष नहीं होता। हम सदा विकृत चीजों के पीछे, अस्वाभाविक उत्तेजनाओं के पीछे दौड़ा करते हैं, हमें खान-पान, वातावरण और जीवन भी अस्वाभाविक चाहिए। और जहाँ तक भय का प्रश्न है, हमारा सारा जीवन भय की पोटली मात्र है। मृग को तो केवल बाघ, भेड़िया इत्यादि का ही डर रहता है, पर मनुष्य को सारी सृष्टि से डर बना रहता है।

–स्वामी विवेकानन्द

(विवेकानन्द साहित्य सचयन : पृष्ठ ५२-५३)

जानकीरूपिणी माँ सारदा

स्वामी शशांकानन्द
–सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

पश्चिम बंगाल के बाँकुड़ा जिला में प्रसिद्ध विष्णुपुर रेलवे स्टेशन पर वृक्ष के नीचे गाड़ी की प्रतीक्षा में साधारण सफेद साड़ी पहने एक महिला बैठी हुई थी । उसे कलकत्ता जाना था । गाड़ी आने में देर थी । उसी समय एक कुली ने दूर से उसे देखा तो चौंक उठा और व्याकुल होकर उस महिला की ओर दौड़ता हुआ आया और उसके चरणों से लिपट गया । रोते-रोते उसने कहा, 'अरे मेरी जानकी माई ! मैं तुम्हें कितने दिनों से खोजता फिर रहा हूँ । इतने दिनों तक तुम कहाँ थी ?' ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्वप्न में माता जानकी के दर्शन किए थे और आज उसी स्वप्न में देखी हुई देवी को उसने इस रेलवे स्टेशन पर सामने बैठी हुई महिला के जीते जागते रूप में देखा । जानकी तो त्रेता में आयी थीं, भला कलियुग में ये कौन-सी जानकी आ गई ? सम्भवतः आपने समझ ही लिया होगा कि यह महिला और कोई नहीं, युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव की लीला सङ्गिनी माँ सारदा थीं ।

श्री माँ ने अपने भक्त को शान्त कर एक फूल ले आने को कहा । वह दौड़ता हुआ गया और फूल ले आया और श्री माँ के पादपद्मों में उसे अर्पण किया। श्री श्री माँ ने कृपा करके उसे मंत्र दीक्षा दी ।
(द्रष्टव्य : स्वामी अपूर्वानन्द कृत माँ सारदा, पृ. ४०९)

क्या श्री माँ सारदा उस कुली की ही जानकी मैया थीं ? नहीं नहीं यह वही थीं जो त्रेता में जानकी के रूप में श्री राम के साथ, द्वापर में श्री राधा के रूप में श्याम के साथ और कलियुग में भगवान श्रीरामकृष्ण के साथ आयी हैं ।

इस कुली के स्वर स्वामी विवेकानन्द रचित श्रीरामकृष्ण स्तोत्रम् में झंकृत होते हैं :

त्रैलोक्येऽप्यप्रतिममहिमा जानकी प्राणबंधः ।
भक्त्या ज्ञानं वृतवरवपुः सीतया यो हि रामः ॥

इन तीनों लोकों में भी जिनकी महिमा की तुलना नहीं, जो सीता के परम प्रेमास्पद थे, जिन ज्ञान स्वरूप रामचन्द्र जी की श्रेष्ठ देह भक्ति स्वरूपिणी सीता द्वारा आवृत्त थी ।

'सोऽम जातः प्रथितापुरूषो रामकृष्णायं स्त्विदानीम् ।'

उन्हीं विख्यात परम पुरुष ने इस काल में रामकृष्ण रूप में जन्म लिया है ।

'जो राम, जो कृष्ण वही अब रामकृष्ण' भगवान श्रीरामकृष्ण की यह घोषणा जितनी सत्य और महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण सत्य यह भी होगा अगर हम कहें, 'जो सीता, जो राधा वही अब माँ सारदा ।'

श्रीरामकृष्ण लीला प्रसङ्ग के लेखक स्वामी सारदानन्द जी ने एकाधिक स्थानों में लिखा है :

'हमने बारंबार उन्हें यह कहते हुए सुना है, 'जो राम और कृष्ण के रूप में आविर्भूत हुए थे, वे ही इस समय (अपने शरीर को दिखाकर) इस आवरण के अन्दर आए हुए हैं–राजा जिस प्रकार अपना वेष बदलकर कभी-कभी नगर में घूमने के लिए निकलते हैं, उसी प्रकार गुप्त रूप से अब की बार उनका इस पृथ्वी पर आगमन हुआ है ।'

'जो राम एवं जो कृष्ण थे, वे ही इस समय रामकृष्ण हैं । श्रीरामकृष्ण ने केवल कहा ही नहीं बहुत से भक्तों को श्रीराम तथा श्रीकृष्ण के रूप में दर्शन भी दिए थे। उदाहरणार्थ हम दो एक घटनाओं का उल्लेख कर रहें हैं :

भैरवी ब्राह्मणी पूजा अर्चना के बाद अपने रघुवीर को भोग निवेदन कर ध्यानमग्ना बैठी थी कि भावावेश में श्रीरामकृष्ण ने भोग उठाकर खा लिया था । आँखें खुलीं तो ब्राह्मणी बाह्यज्ञानरहित भावाविष्ट श्रीरामकृष्ण देव को देख रोमांचित हो उठी थीं । श्रीरामकृष्ण के शरीर एवं मन में अधिष्ठित श्री रघुवीर के जाग्रत दर्शन कर उन्होंने अपनी बाह्य पूजा सार्थक समझकर रघुवीर शिला को गंगा में विसर्जन कर दिया था ।
(लीला प्रसंग–1, पृ. २८०)

'एक दिन कामारहाटी की ब्राह्मणी अधोरमणि देवी रात के तीन बजे जप कर रही थीं । जप समाप्त होने पर इष्टदेव को जप समर्पण करने के पूर्व जब वे प्राणायाम कर रही थीं, उस समय उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपनी बाँयी ओर बैठे हुए देखा । उनके दाहिने हाथ की मानो मुट्ठी बँधी हुई है । दक्षिणेश्वर में उनको श्रीरामकृष्ण देव का जैसा दर्शन प्राप्त होता था, उस समय भी वह उतना ही स्पष्ट तथा सजीव था ।' जैसे ही अधोरमणि ने मुस्कराते हुए श्रीरामकृष्ण रूप गोपाल का हाथ पकड़ना चाहा कि वे सचमुच 10 महीने के गोपालरूप बनाकर घुटनों से चलते हुए आ कर एक हाथ उठाकर बोले, 'माँ मुझे मक्खन दो ।' अधोरमणि ने अपने इष्ट गोपाल का दर्शन श्रीरामकृष्ण के रूप में किया था । वही श्रीरामकृष्ण माँ सारदा के सम्बन्ध में कहते हैं : वो क्या ऐसी-वैसी है, वो मेरी शक्ति हैं ।
(श्री माँ सारदा देवी, पृ. १४२)

यदि भगवान विष्णु, श्रीराम और श्रीकृष्ण और श्रीरामकृष्ण रूप में अवतरित हुए तो इसमें सन्देह ही

कहाँ रह जाता है कि युग-युग में उनके साथ बैकुण्ठ निवासी माँ लक्ष्मी ही सीता, राधा और सारदा रूप में अवतरित हुई हैं । वे सीतारूपिणी भी थीं और राधारूपिणी भी । अपने इस लेख को हम सीतारूपिणी सारदा तक ही सीमित रखेंगे ।

सीतारूपिणी श्री माँ सारदा को रामरूपी श्रीरामकृष्ण देव ने इस सत्य को स्वीकार किया था । श्रीरामकृष्ण को पंचवटी में माता जानकी के दर्शन हुए थे । दर्शन करते हुए श्रीरामकृष्ण देव ने माता जानकी के हाथ में हीरा जड़ित कंगन देखा था । सीता जी के कंगनों को देखकर ही जानकीरूपिणी माँ सारदा के लिए उन्होंने सोने के वैसे ही कंगन बनवा दिए थे ।

कंगन देकर उन्होंने कहा, 'अरे उसका और मेरा यही सम्बन्ध है ।' श्रीरामकृष्ण रूपी राम का सीतारूपिणी सीता के साथ यही सम्बन्ध था । (श्रीमाँ सारदा देवी पृ.१४२)

सम्भवतः हनुमानजी के भाव में दास्यभक्ति की साधना करते समय उनका मन श्रीराम-श्रीराम रटते हुए राममय हो गया होगा । और जब वे पंचवटी में ऐसे ही बैठे थे कि अचानक उनके भीतर त्रेतायुगी राम को पाया और पूर्वावतार की स्मृति उजागर हो गईं तथा उन्होंने माँ जानकी की साक्षात् जीवित मूर्ति देखी । वह सोच ही रहे थे कि ये कौन है कि उसी समय एक बन्दर को हुप-हुप करते हुए माता जानकी के पास आते हुए देखकर यह जानते देर न लगी कि ये ही त्रेतायुगी सीता हैं । वे तुरन्त श्रीरामकृष्ण की ओर बढ़ते हुए उन्हीं में समा गयीं । सम्भवतः कलियुग में माँ सारदा को जानकी रूपिणी देखते हुए ही उन्होंने सोने के कंगन बनवा दिये थे । कंगन बनवाकर कहा था, उसका ओर मेरा यही संबंध है उल्लेखनीय है कि श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा का सम्बन्ध युगान्तर का है । यह ज्ञान इस अवतार में भी सारदा देवी को अल्पायु से ही रहा था । 'श्री श्री रामकृष्ण पूँथि' में उल्लेख मिलता है (खंड २, विवाह)। एक बार भगवान श्रीरामकृष्ण अपने भांजे हृदय के घर गए हुए थे । वहाँ एक दिन कुछ गायकों ने गाना गाए। गाना सुनकर बहुत लोग इकट्ठा हो गए । गाना सुनती हुई महिलाओं में से एक की गोद में छोटी बच्ची सारदा थी । उस महिला ने गीत समाप्त होने पर विनोद में सारदा से पूछा, 'इस जगह इकट्ठे हुए लोगों में से तू किससे शादी करना चाहती है ?' सारदा ने तुरन्त दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया । सम्भवतः सांसारिक दृष्टि से नरदेह में छोटी सारदा के 'विवाह' का अर्थ भी समझना असम्भव था, परन्तु हमें भूल न जाना चाहिए कि युग-युग में युगावतार के साथ उनकी लीलासङ्गिनी के लिए स्वयंवरा होना परम्परा है ।

त्रेता में श्रीराम के साथ अपने पर यद्यपि महाराज जनक की कठिन प्रतिज्ञा उनके और उनकी लीलासङ्गिनी के मध्य एक कठोर दीवार लगती परन्तु जानकीजी ने जैसे ही श्रीराम को देखा तो मन ही मन उन्हें वर कर माँ गौरी से प्रार्थना करती हैं और स्पष्ट कुछ न कह कर संकेत देती हैं ।

मोर मनोरथ जानहु नीके,
बसहु सदा उर पुर सबही कें ।

माँ ! आप तो सबके हृदयनिवासिनी हैं आप मेरे मन की बात अर्थात् श्रीराम ही मेरे वर हों यह मेरा मनोरथ जानती हैं । इसे पूरा करें ।

इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण भी जानते थे और उन्होंने ही इसका संकेत तब दिया जब उनके वैराग्यपूर्ण मन को विवाह के बन्धन में बाँधने के लिए उनकी माँ और मझले भाई थक गए । उन्होंने बालक सुलभ आनन्द और उत्साह प्रकट करते हुए कहा, 'जयरामबाटी के श्री रामचन्द्र मुखर्जी के घर जाकर देखो कि कन्या मेरे लिए चिह्नित कर रखी गयी हैं ।

जिस प्रकार जनकपुरी की फुलवारी में माँ सीता ने श्रीराम को देखते ही अपना हृदय समर्पित कर दिया था और श्रीराम ने लक्ष्मण को संकेत दिया था ।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा ।
सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सब कारन जान विधाता ।
करकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥
रुघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥

सीताजी की आलौकिक शोभा देखकर मेरासहज अर्थात् स्वभाव से पवित्र मन आकर्षित हो रहा है । यह सब विधाता ही जानें । हे भ्राता मेरे अंग फड़क रहे हैं जो शुभ सूचना दे रहे हैं । रघुवंशियों का सहज स्वभाव है कि कुपंथ पर पाँव नहीं पड़ता । अर्थात् संकेत है, मेरा सीता की ओर आकर्षित होना कुविचार नहीं है यह तो जन्म-जन्म का नाता है ।

श्री माँ की अपनी अनुभूति

दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए श्री माँ जब रामेश्वरम् पहुँचीं तब अनाच्छादित रामेश्वर लिंग को देखकर सीतारूपिणी माँ सारदा का मन त्रेता युग में पहुँच गया था और सम्भवतः उसी स्मृति के जाग्रत होने पर उन्हें यह अनुभव हुआ होगा कि त्रेता युग में श्रीरामचन्द्र की प्रेयसी, जन्म दुखिनी सीतादेवी के रूप में अवतीर्ण होकर

समुद्र के तट पर बैठकर उन्होंने बालु का निर्मित शिवलिंग की पूजा की थी और आज अनाच्छादित रामेश्वर लिंग को उन्होंने उसी प्रकार बालू निर्मित पाया । इसीलिए उसे देखकर श्री माँ सहसा बोली, 'जैसा रख गयी, ठीक वैसा ही है' कलकत्ता लौटने पर भी केदार बाबू के पूछने पर, 'माँ रामेश्वर आदि को कैसा देखा ?' माँ के मन में वह स्मृति इतनी ताजा थी कि माँ ने उत्तर दिया, 'बेटा जैसा रख आयी थी, ठीक वैसा ही है ।

जनकनन्दिनी सीता ने श्रीराम के वनवास गमन की बात सुनकर श्रीराम के बिना अयोध्या के महलों में नहीं रहना चाहा । वे कहती हैं :

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं ।
पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं ॥
प्राणनाथ करूणायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान् ॥

हे प्राणनाथ ! हे दया के धाम् ! हे सुन्दर ! हे सुखों को देने वाले ! हे सुजान ! हे रघुकुल कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा ! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है ।

वही पति वियोग की असह्य पीड़ा माँ सारदा के जीवन में भी दृष्टव्य है ।

विवाह के समय श्री माँ सारदा देवी की आयु मात्र ६ वर्ष थी । पति वियोग की पीड़ा उस समय वे क्या जानें । १४ वर्ष की आयु में प्रथमबार उन्हें पतिदेव के साथ कामारपुकुर रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ । देह बुद्धि रहित श्रीरामकृष्ण के दिव्यसंग तथा स्नेह यत्न को प्राप्त कर पवित्रहृदया बालिका ने अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया था । वे कहती हैं, 'तब से मैं सर्वदा यह अनुभव किया करती थी कि मेरे हृदय में मानों आनन्द का पूर्णघट स्थापित हो चुका है, उस शान्त निश्चल दिव्य उल्लास से मेरा हृदय किस प्रकार भरा रहता था यह बतलाना मेरे सामर्थ्य से बाहर है ।'

कुछ महीनों बाद श्रीरामकृष्ण के दक्षिणेश्वर लौट जाने पर माँ सारदा अपने नैहर लौट आयीं । आनन्द निमग्ना रहते हुए भी उन्होंने पतिवियोग की पीड़ा अनुभव की थी । शरीर से जयरामबाटी में रहते हुए भी उनका मन भौंरा सदा दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के चरणकमलों में मंडराता रहता था । श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन और समीप रहने की प्रवल उत्कण्ठा में वे उस दिन की प्रतीक्षा करती रहीं जब वे पति वियोग से मुक्त होंगी ।

चार वर्ष बाद अठारह वर्ष की आयु में अपने पतिदेव के सम्बन्ध में बहुत सी अफवाहें सुन उनका मन व्याकुल हो उठा था और दक्षिणेश्वर जाने की ठान ली थी । पतिवियोग की पीड़ा अब असह्य हो उठी थी। तब रामचन्द्र मुखोपाध्याय स्वयं अपनी पुत्री को दक्षिणेश्वर ले जाते हैं । सीतारूपिणी माँ सारदा दक्षिणेश्वर में कष्ट सहते हुए भी सर्वदा अपने रामरूपी रामकृष्ण के साथ रहीं ।

वन गमन के समय श्रीराम, लक्ष्मण और सीता को तापस वेष अर्थात वल्कल वस्त्र पहन वन में जाने का कैकेयी का आदेश सुनकर मंत्री सुमन्त्र और राजगुरु वशिष्ठ ने आपत्ति करते हुए कैकेयी को बहुत भला बुरा कहा और सीता को महारानी कोमल वस्त्राभूषण परित्याग न करने तथा वल्कल वस्त्र न पहनने का आदेश दिया ।

किन्तु श्रीराम के तपस्वी के वेष में वन गमन को देख सीताजी ने गुरुवशिष्ठ के आदेश दिए जाने पर भी वस्त्राभूषण परित्याग कर वल्कल वस्त्र धारण किए थे।

तस्मिस्तथा जल्पति विप्रमुच्चे गुरौ नृपस्या प्रतिमप्रभावे।
नैव स्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुः प्रतिकारकामा॥
(क. रा. अयोध्याकाण्ड प्रसर्ग ३६ श्लोक ३७)

श्री माँ सारदा देवी के जीवन में भी देखा जाता है कि पतिदेव द्वारा दस हजार रुपये ठुकराये जाने पर उन्होंने भी पति का अनुसरण कर धन ठुकरा दिया ।

मारवाड़ी भक्त लक्ष्मीनारायण ने जब श्रीरामकृष्ण को दस हजार रुपये देना चाहा तो उन्हें लगा कि उनका सिर आरे के नीचे रख दिया गया है । माँ काली से उन्होंने कहा, 'माँ, माँ इतने दिनों बाद फिर मुझे प्रलोभन दिखाने आयी ? माँ सारदा की इच्छा जानने के लिए उन्हें बुलाकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'देखो, ये इतना रुपया देना चाहते हैं । जब मैंने कहा कि मैं नहीं ले सकता, तब ये तुम्हारे नाम से देना चाहते हैं । तुम इसे स्वीकार करो न ।' यह सुनते ही उन्होंने का, 'यह कैसे हो सकता है ? रुपया नहीं लिया जा सकता । यदि मैंने लिया तो वह तुम्हारे ही लेने के समान हुआ । स्वयं तुम्हारी श्रद्धा भक्ति करते हैं तुम्हारे त्याग के निमित्त । अतः यह रुपया नहीं लिया जा सकता ।' सीतारूपिणी सारदा ने भी अपने रामरूपी श्रीरामकृष्ण के समान त्याग की भावना को ही स्वीकारा और दस हजार रुपयों को अस्वीकार किया ।

श्रीराम के परम सेवक श्री हनुमान जी महाराज ने श्रीरामकृष्ण अवतार के समय श्रीरामकृष्ण रूप में श्रीराम और माँ सारदा के रूप में माता जानकी को छोड़ा नहीं । वे स्वयं स्वामी विवेकानन्द के रूप में अवतरित हुए थे ।

समुद्र पार कर श्रीरामकृष्ण का कार्य सम्पन्न कर जब वे (स्वामीजी) भारत लौटे तो श्री माँ सारदा देवी के चरणों में उपस्थित होकर माँ को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । फिर उन्होंने सीतारूपिणी माँ सारदा से कहा :

'माँ आपके आशीर्वाद से इस युग में छलांग न लगा कर, उन्हीं के बनाए जहाज में चढ़कर उस मुल्क में गया था। वहाँ भी मैंने ठाकुर की महिमा देखी। कितने ही सज्जन लोगों ने मन्त्र मुग्ध मुझसे उनकी बातें सुनीं और उनका भाव ग्रहण किया।' स्वामीजी की यह उक्ति भावना का प्रवाह नहीं थी। श्री माँ में माता जानकी का भाव उनकी अनुभूति थी। वे बिना परखे विश्वास नहीं करते थे। माँ कहती हैं, 'नरेन मानो नंगी तलवार था।' लंका में माता जानकी की अनुमति लेकर आशीर्वाद प्राप्त कर जिस प्रकार हनुमानजी ने फल खाए, पेड़ उजाड़े, राक्षसों को मारा, रावणपुत्र का वध किया और अन्त में लंका जला दी, इस युग में भी सीतारूपिणी माँ सारदा की अनुमति ले उनके आशीर्वाद से स्वामी विवेकानन्द रूपी हनुमान ने उस देश में जो सफलता प्राप्त की और श्रीरामकृष्ण की वाणी की ज्ञानाग्नि से पाश्चात्य में स्वर्णिम भौतिकवादी विचारों को भस्मकर दिया यह श्री माँ का ही आशीर्वाद था। वे अमेरिका से स्वामी शिवानन्दजी को लिखते हैं, 'तारक भाई, अमेरिका आने से पहले आशीर्वाद पाने की कामना से श्री माँ को पत्र लिखा था, उन्होंने जैसे ही आशीर्वाद दिया वैसे ही हुम् करके सागर पार, समझे।'

कुटुम्व हीन, मित्र हीन अपरिचित स्वामीजी हनुमानजी की तरह अकेले ही सनातन धर्म की पताका फहराकर विश्वविजयी हुए थे। वे सर्वदा यही अनुभव करते रहे कि श्री माँ का आशीर्वाद उनकी रक्षा करता रहा है। सहस्रों संकटों, प्रतिकूल परिस्थितियों की अग्नि की लपटों को श्री माँ के आशीर्वाद ने पास भी नहीं फटकने दिया जैसा कि जलती हुई लंका की लपटों से हनुमानजी की रक्षा माता जानकी का आशीर्वाद करता रहा। स्वामीजी कहते हैं : 'वहाँ (अमेरिका में) मुझे जो व्यापक सम्मान तथा अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई उसमें मुझे यह अनुभव हुआ था कि केवल माँ के आशीर्वाद की शक्ति से ही असम्भव संभव हुआ था।' लंकादहन के बाद जैसे हनुमानजी अशोक वाटिका में माता जानकी के चरणों में उपस्थित होकर शीतल हुए थे उसी प्रकार अमेरिका से लौटकर स्वामीजी श्री माँ सारदा के चरणों में उपस्थित होकर अपनी क्लान्ति मिटा सके थे।

स्वामीजी अपने को श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा का जन्मजन्मान्तर का दास मानते थे। अर्थात् युग-युग में भगवान अपनी शक्ति सहित अवतीर्ण होते हैं और उनके साथ उनके पार्षद भी आते हैं। श्री माँ स्वयं कहती थीं, 'जो जिसका है वह उसका है, युग-युग में अवतार।' जो सब पहले आये थे, वे ही सब आये हैं।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, 'मैं अगर आऊँ तो वे सब कहाँ जायेंगे ? प्राण नहीं रह पायेंगे। कलमी साग की तरह (एक दूसरे से जुड़े हुए) एक जगह बैठकर खींचने से सब आएगा।' अतः पूर्व अवतारों की विशेषकर श्रीराम सीता अवतार की स्मृति के आधार पर ही स्वामीजी ने अपने को जन्मजन्मान्तर का दास बताया था।

स्वामी विवेकानन्दजी की दृष्टि में श्री माँ का स्थान श्रीरामकृष्ण से भी ऊपर था। उन्होंने महापुरुष महाराज को एक पत्र में लिखा था, 'श्रीरामकृष्ण चले गए तो कोई डर नहीं, परन्तु माता जी चली गईं तो सर्वनाश हो जाएगा।' इसे लिखते हुए निश्चय ही उनके मन में राम और सीता की बात ही स्मरण हो आयी थी। वे लिखते हैं, 'भाई, माँ के सम्बन्ध में सोचने से कभी-कभी कहता हूँ, 'को रामः ?' अर्थात् रामचन्द्र भला कौन ? सीता ही मेरी सब कुछ है। भाई यह जो कह रहा हूँ यही मेरी कट्टरता है।'

उपरोक्त लेख का तात्पर्य पाठकों को स्पष्ट हो चुका होगा। विष्णुपुर स्टेशन के एक कुली से होकर युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द एवं युगावतार श्रीरामकृष्ण तक की दृष्टि में जनकनन्दिनी सीता ही माँ सारदा के रूप में अवतरित हुई थीं। इस सत्य का आभास श्री माँ को भी था।

❑

"मनुष्य के मन को चोट पहुँचा कर क्या बात करनी चाहिए ? बात सच होने पर भी उसे अप्रिय ढंग से नहीं बोलना चाहिए। नहीं तो स्वभाव बाद में वैसा ही हो जाता है। मनुष्य का यदि आँखों का संकोच चला जाय तो मुँह में कोई बात रुकती नहीं। ठाकुर कहते थे, 'यदि किसी लंगड़े से पूछना हो कि तुम लँगड़े कैसे हुए तो उससे कहना चाहिए कि तुम्हारे पैर ऐसे मुड़ कैसे गए ?'

—श्री माँ सारदा देवी

यात्रा-वर्णन

चलो मन ठाकुर-माँ के गाँव

–डॉ० निवेदिता बक्शी
कुर्ला, मुम्बई

जैसे अयोध्या की महिमा राम जन्म के कारण है, मथुरा की महिमा कृष्ण जन्म के कारण है, वैसे ही कामारपुकुर की महिमा श्री रामकृष्ण परमहंस के जन्म और जयरामवाटी की महिमा माँ सारदा की जन्मभूमि होने के कारण है। युगावतार के कारण उनका अवतरण स्थान पुण्यभूमि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। आज के युग में कामारपुकुर और जयरामवाटी महान तीर्थ के रूप में हैं। न केवल देश के कोने-कोने से, बल्कि विदेशों से भी कितने ही भक्त यहाँ आकर इस पुण्य भूमि के स्पर्श से पवित्र होकर सुखमय स्मृति के साथ लौटते हैं।

फरवरी के महीने में हमारे भतीजे की शादी कलकत्ते में तय हुई। हमें योगदान देना ही था। इस अवसर का लाभ उठाकर हमने तय किया इसी समय हम कामारपुकुर और जयरामबाटी जायेंगे। हमने मुम्बई के आश्रम में जाकर वहाँ का पता लिया और महाराज को पहले से ही हमारे आने और रहने के लिये व्यवस्था के लिये लिख दिया। सिर्फ १ हफ्ते में ही उनका सम्मति-पत्र आ गया।

ठाकुर ने अपने श्रीमुख से कहा था। 'यह स्थान जयरामबाटी-कामारपुकुर यह सब स्थान आनंद के कोहरे से ढँका हुआ देख रहा हूँ। आनंद का कोहरा। यदि इच्छा होती तो मैं कामारपुकुर को सोने से मढ़वा सकता था।'

माँ ने कहा था 'तुम भक्तों को यहाँ तीन रात्रि वास करने से देह शुद्ध जो जायगी। यह (जयरामवाटी) शिवपुरी है। यहाँ इतना जप ध्यान नहीं करना पड़ेगा। यहाँ आकर खाना पीना और आनंद करना है। विधि की भी क्षमता नहीं है कि मेरे बच्चों को नष्ट करे। यहाँ जो आयेगा (ठाकुर के चरणों में) उसका अंतिम जन्म होगा।'

कामारपुकुर कलकत्ते से १०४ किमी० की दूरी पर है। एसप्लेनेड से बसें बाकुड़ा तक जाती हैं। वे ही कामारपुकुर जयरामबाटी होकर जाती हैं। विष्णुपुर जाने वाली बसें भी इसी जगह से होकर जाती हैं। कामारपुकुर से जयरामवाटी सिर्फ ६ किमी० दूर है। हम ८ लोग थे। इसलिये हमने टाटासूमो लेने का निश्चय किया। हमें करीब १५०० से २००० रुपये तक देना पड़ा। हमारी गाड़ी हमारे साथ ही रुकी थी। ड्राईवर के रहने के लिये वहाँ अलग स्थान है।

हमनें कलकत्ते से करीब १० बजे यात्रा प्रारंभ की। ठाकुर माँ की जयजयकार करते हुए भजन गाते हुए हमारी यात्रा शुरू हुई। कलकत्ते के कोलाहल को पीछे छोड़ते हुए अब हमारी गाड़ी आगे बढ़ती गई। दोनों तरफ हरे भरे खेत खलिहान पेड़-पौधे हमारे साथ ही भक्ति भाव से झूम रहे थे। हमें सोचते हुए भी आश्चर्य होता है कि श्री माँ किस प्रकार पदयात्रा में जयरामवाटी से दक्षिणेश्वर आई थीं। श्री मास्टर महाशय, बिरजानन्द आदि ठाकुर के कई शिष्य एवं भक्त पैदल ही कामारपुकुर की यात्रा किया करते थे। हमें कामारपुकुर पहुँचने में काफी समय लग गया। हम ठीक दोपहर के दो बजे ठाकुर की जन्मभूमि पर पहुंचे। उतरकर हमने कामारपुकुर की धूलि को सिर पर लगाया। मंदिर बंद हो चुका था। 'हम रामकृष्णमिशन के आफिस में पहुँचे शंकित मन से कि हमें प्रसाद मिलेगा कि नहीं। हालाँकि हमने अपने आगमन की सूचना पहले से ही दे दी थी। महाराज ने प्रसन्नमन से हमारा स्वागत किया। सच प्रसन्नमन से स्वागत करना कितनी बड़ी चीज होती हैं! हमारी सारी थकान दूर हो गई। महाराज ने हमें प्रसाद के लिये भोजनकक्ष में भेज दिया। हमारा मन आनंद से उछल रहा था। हम हाथ धोकर भोजन घर में बैठे और बहुत ही प्रेम से परोसे गये प्रसाद को खाते समय अनायास आनंदाश्रु निकल पड़े। हमने ठाकुर माँ को कोटि-कोटि प्रणाम किया। तत्पश्चात् महाराज ने हमारे रहने का इन्तजाम नवीन रामकृष्णमिशन के गेस्टहाउस में किया। रहने की व्यवस्था बहुत ही सुन्दर थी। आलमारियों में सलीके से रजाई और मच्छड़दानी रखी हुई थी। हमें दो कमरे दिये गये और हमने एक डेढ़ घंटे विश्राम किया। गहरी नींद लग गयी थी। अचानक दूर से जोर-जोर से बोलने की आवाज आ रही थी। पहले लगा कोई कैसेट सुन रहा है। फिर मैं उठी और आवाज को ध्यान में रखते हुए एक जगह पर पहुँची। वहाँ देखा आने वाले उत्सव के लिए एक नाटक का रिहर्सल हो रहा है। महाराज बैठे निर्देशन कर रहे हैं। ७-८ महिलाएँ और पुरुष नाटक कर रहे हैं।

हम हाथमुँह धोकर ४ बजे निकले । मंदिर ४ बजे खुलता है । कामारपुकुर को पहले सुखलालगंज के नाम से जाना जाता था क्योंकि ग्राम के जमींदार का नाम था सुखलाल गोस्वामी । यह एक छोटा सा सुन्दर हरे भरे खेतों से भरा हुआ गाँव है ! गाँव के लोग सुंदर, सादे और हंसमुख हैं । चेहरे पर संतोष की रेखा है । यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती है । लकड़ी के सामान तैयार होते हैं । मूर्तिकार भी हैं और मिठाई बनाने वाले कुशल कारीगर भी हैं । ठाकुर को कामारपुकुर की जलेबी बहुत पसंद थी । हमनें गेट से प्रवेश किया । बायीं ओर मिशन का आफिस घर है और दाहिनी ओर युगी का शिव मंदिर है । छोटा सा मंदिर अंदर में सुंदर शिवलिंग है । ठाकुर के जन्म की दिव्य कहानी है । उनकी माता चन्द्रमणि देवी, धनी कमारिनी के साथ इसी शिव मंदिर के सामने खड़ी होकर बातें कर रहीं थी । अचानक उन्होंने देखा कि मंदिर दिव्य ज्योति से प्रकाशित हो गया और वह ज्योति तेजी से उनके उदर में प्रवेश कर रही है । और वे मूर्छित हो गयीं । जब वे होश में आईं तो उन्हें लगा जैसे गर्भ का संचार हुआ है । यहाँ के शिव का नाम शांतिनाथ है । रामानन्द युगी इस मंदिर के प्रतिष्ठाता थे । युगी वंश के लोप हो जाने पर ठाकुर शिवमंदिर के बरामदे में बैठकर धर्मग्रन्थ पढ़ते थे । और स्वगृह से शिवलिंग की पूजा भी किया करते थे । मंदिर के सामने जलीमिट्टी की अदभुत चित्रकारी दृष्टिगोचर होती है । दोनों तरफ १८ लाइन में लगी हुई देवी देवताओं की मूर्तियाँ तथा अंग्रेजों की बंदूकें लेकर मूर्तियाँ भी अंकित हैं । दरवाजे के ऊपर रामरावण युद्ध भी अंकित है जिसकी ऊँचाई ३५ फीट है ।

आगे बढ़ते ही एक विराट आम्रवृक्ष देखने को मिला जिसे ठाकुर ने अपने हाथों से लगाया था । अब इसे सुरक्षित ढंग से घेर दिया गया है । यहाँ की पत्तियाँ सब यात्री अपने घर ले जाते हैं । अब हम मंदिर में प्रवेश कर रहे हैं । मंदिर वहीं पर बना है जहाँ ढेकी घर में ठाकुर का जन्म १६ फरवरी को १८३६ में हुआ था । ढेकीघर अर्थात् जहाँ धान कूटा जाता है ओर पास में चूल्हा भी था जहाँ धान उबाला जाता है । माता चन्द्रमणि ने यहीं पर बालक को जन्म दिया था । जब धनी कामारिनी चन्द्रमणि की सेवा करने के पश्चात् शिशु को नहलाने के लिये गयी । शिशु कहीं भी नजर नहीं आया । प्रकाश को तेज कर धनी ने देखा शिशु फिसलकर चूल्हे के भस्म में जा गिरा है । उन्होंने जब शिशु को उठाया तो राख में लिपटा हुआ बालक अत्यन्त बड़ा दिखाई दिया जैसे ६ महीने का बालक ।

उसी स्थान पर मंदिर का निर्माण पत्थर से बड़े ही यत्न और परिश्रम से बंगाल के विख्यात शिल्पी नन्दलाल बोस ने किया था जो रवीन्द्रनाथ टैगोर के बहुत अंतरंग शिष्य थे । स्वामी सारदानन्द जी ने मंदिर की प्रतिष्ठा १९५१ में ११ मई के दिन की थी । भाजा कला की कलाकृति और त्रिरथयुक्त मंदिर की कारीगरी में अद्भुत सौम्यता व गंभीरता छिपी हुई है । मंदिर के शीर्ष में शिवलिंग का प्रतीक है । प्रवेश द्वार पर गरुड़ की मूर्त्ति, पश्चिम की तरफ शंख और पूर्व की ओर कमल है । मंदिर की ऊँचाई करीब ४५ फीट है और चौड़ाई १२ फीट। गोपेन्द्र कुमार सरकार के द्वारा यह मंदिर प्रतिष्ठित हुआ था । मंदिर के अंदर शिल्पी नन्दलाल वसु के द्वारा परिकल्पित श्वेत संगमरमर से बनी हुई ठाकुर की मूर्ति एकदम सजीव लगती है । पुष्प और धूप दीप से सुसज्जित है । श्वेत पत्थर की वेदी जिसके ऊपर मूर्ति विराजमान हैं उस पर ढेकी चूल्हा और प्रदीप आदि के नक्शे हैं । मंदिर में नित्य सुबह शाम पूजा, आरती भोग और संध्या के समय शास्त्रपाठ होता है ।

मंदिर के सम्मुख श्वेतपत्थर का मंच से घिरा हुआ नाट मंदिर है जिसकी रचना १९५३ में दिसम्बर के महीने में हुई थी । यहाँ पर स्वामी विवेकानन्द, सारदानन्द और प्रमुख संन्यासियों के चित्र लगे हुए हैं । दीवारों पर ठाकुर के जन्म की कथा अंकित है और चित्रकारी की गई है । यह नाटमंदिर ५० फीट लम्बा २० फुट चौड़ा और १५ फुट ऊँचा है । मंदिर सबेरे ४ से ११ बजे तक, शाम को ४ से ८ बजे तक खुला रहता है । मंदिर की बायीं तरफ रघुवीर का मंदिर है । ठाकुर के वंश के कुलदेवता रघुवीर थे । इस मंदिर में रघुवीर शिला-रामेश्वर शिवलिंग, गोपालमूर्ति, नारायण शिला और घर में स्थापित माता शीतला की आज भी पूजा होती है । जिस वेदी पर शिलाएँ स्थापित हैं उन्हें ठाकुर के पिता श्री क्षुदीराम ने अपने हाथों से सिर पर मिट्टी लाकर बनाई थी । रघुवीर शिला की प्राप्ति क्षुदीराम को बड़े ही अद्भुत ढंग से हुई थी और रामेश्वर शिला भी वे स्वयं पदयात्रा से रामेश्वर जाकर शिवलिंग लाये थे । यह श्वेतपत्थर का बानलिंग है । क्षुदीराम इसकी नित्यपूजा करते थे । ठाकुर भी उपनयन के पश्चात् भक्ति भाव से पूजा किया करते थे । परवर्ती काल में शिवराम पूजा किया करते थे । वे ठाकुर के मझले भाई रामेश्वर के बेटे थे। नारायण शिला व गोपाल की धातु की मूर्ति ठाकुर के भाई की पुत्री लक्ष्मीमणि ने स्थापित की थी । मास्टर महाशय ठाकुर के जीवित काल में कामारपुकुर आये थे और रघुवीर की प्रसादी फूल और मिठाई ठाकुर के

लिये ले गये थे । ठाकुर ने प्रसाद ग्रहण किया था । पहले उन्होंने गंध ग्रहण किया सिर और वक्ष में स्पर्श कर के (उदबोधन्) प्रसाद ग्रहण किया । वर्त्तमान में रघुवीर मंदिर में नित्य पूजा भोग आरती होती है । रघुवीर तथा शिवलिंग को खिचड़ी भोग चढ़ाते हैं तथा माता शीतला को मछली का भोग दिया जाता है । ठाकुर के वंशधर ही इनकी पूजा किया करते हैं ।

रामकृष्ण मंदिर के पश्चिम में दक्षिण की ओर द्वार वाला एक मंजिले का मिट्टी का घर है । यही ठाकुर का निवास स्थान है । आज भी मिट्टी की दीवारें हैं । मिट्टी की फर्श है । इसके स्पर्श से लगता है हम ठाकुर को स्पर्श कर रहे हैं । घर उसी तरह से है जैसा पहले था । ठाकुर के द्वारा व्यवहृत विस्तर आदि भी हैं । ठाकुर ने माँ को कहा था–कामारपुकुर के अपने घर को कभी नष्ट नहीं करना । इस कारण ठाकुर के देहावसान के पश्चात माँ सारदा इसी कुटिया में बहुत दिनों तक थीं । घर के भीतर का माप है १३ फीट लम्बा ८ फीट ८ इंच चौड़ा । घर के सामने का बरामदा १६ फीट १० इंच लम्बा और ५ फीट चौड़ा है । इसी घर के पास और एक घर है जो रामलाल का घर है । यहीं पर रामलाल की माता शाकम्भरी देवी लक्ष्मीमनि देवी और शिवराम रहते हैं । बाद में यह दो मंजिलों का बना । इसे भंडार घर के लिये उपयोग करते हैं ।

रामलाल के घर की पूर्व दिशा में बैठकखाना है । यहीं पर ठाकुर ग्रामवासियों के साथ प्रेम से वार्तालाप और धर्मग्रन्थों की चर्चा किया करते थे । हमें महसूस हुआ कि जगत पिता श्री ठाकुर कितनी छोटी सी कुटिया में कितने आनंद से रहते थे जो बड़े-बड़े महलों में रहने वालों को कभी नसीब नहीं होता है ।

रामकृष्ण मठ के अन्दर तीन तालाब हैं । उनमें से दो ठाकुर के समय के हैं–खाँपुकुर और तांतीपुकुर । माँ खाँपुकुर में बर्तन धोती थीं । वहाँ पर फूलों की सुन्दर वाटिका है । पास में साधुनिवास और उस तरफ भंडारघर, गोशाला और खाने का घर है । कहीं पर भी थोड़ी सी गंदगी नहीं है ।

हम अब मंदिर से बाहर निकलकर एक ग्राम की महिला को लेकर कामारपुकुर दर्शन के लिये निकलते हैं । सामने ही हालदार पुकुर (तालाब) है । यहीं पर क्षुदीराम ठाकुर के पिता स्नान किया करते थे । उस समय उनका वक्ष भक्तिभाव से रक्तिम हो जाता था और नैनों से अश्रु निकलते थे । वे सत्य पर प्रतिष्ठित थे । इस कारण गाँव में उनका सम्मान था । उनके स्नान करते समय किसी को भी स्नान करने की हिम्मत नहीं होती थी ठाकुर का बचपन इसी हालदार पुकुर के पास लीला करते हुए बीता । इसे खुदवाया था फकीरचन्द्र हालदार ने । अब यह मठ के अधीन हो गया है ।

इसी तालाब के पश्चिम में जो खेत है उसे लक्ष्मीजला धान्यभूमि कहते हैं । क्षुदीराम को सत्य बोलने के कारण देड़ेपुर गाँव छोड़कर कामारपुकुर आना पड़ा । उनके मित्र सुखलाल गोस्वामी के आह्वान पर उन्होंने ने ही यह भूमि क्षुदीराम को दान में दी थी । क्षुदीराम ने प्रथम धान का रोपण अपने हाथों से 'रघुवीर' के नाम से किया था फिर कृषक बाकी भूमि में धान रोपण करते थे । कभी-भी उनके परिवार को अन्नकष्ट नहीं हुआ ।

मंदिर से थोड़ा आगे निकलकर पूर्व दिशा में लाहाबाबू का चण्डीमण्डप है और वही ठाकुर की पाठशाला है । ठाकुर के शिक्षक का नाम था यदुनाथ सरकार और उनके बाल्यसखा थे गयाविष्णु----। यहीं पर ठाकुर को शिववेश में भावावेश हुआ था । अब इसकी छत टिन से बनी है । अभी भी यहाँ पर कीर्तन, रामायण और नाटक होता है ।

इसी पाठशाला के पश्चिम की तरफ लाहाबाबू का चंडीमंडप और दुर्गामंदिर है । यहाँ दुर्गापूजा विशेष रूप से आयोजित होती है । लाहाबाबू को स्वप्न में आदेश हुआ था मंदिर निर्माण और पूजा करने के लिए ।

पाठशाला के उत्तर पूर्व में जो मंदिर है वह है पार्वतीनाथ शिवमंदिर । यह प्रसन्नमयी, (लाहाबाबू की विधवा कन्या) जो ठाकुर माँ को बहुत मानती थी, के द्वारा प्रतिष्ठित है । वे नित्य शिव-पूजा किया करती थीं और ठाकुर को इष्टरूप में मानती थीं ।

हम पूछते-पूछते लाहाबाबू के घर गये । वे उस समय के जमींदार थे और ठाकुर के परिवार से उनका खूब मेलजोल था । उनके पुत्र गया विष्णु ठाकुर के मित्र थे । लाहाबाबू के घर जाकर ठाकुर नृत्य गायन रामायण पाठ आदि अंतःपुर में किया करते थे । पास में ही पंचरत्न शिवमंदिर है जो लाहाबाबू के द्वारा स्थापित किया गया था । अब जीर्णावशेष ही है । थोड़ी दूर पर 'दामोदर विष्णुमंदिर' है । यह लाहाबाबू के कुलदेवता हैं । यह ऊँची भित्ति पर निर्मित है । सामने दीवाल पर सुन्दर मूर्तियाँ हैं । मंदिर के गर्भगृह में सिंहासन पर दामोदर शिला है और घट में शीतलामाता हैं । ठाकुर की पाठशाला के उत्तर में लाहाबाबू का रासमंच था । बहुत दूर-दूर के लोग रासपर्व देखने आते थे । भिन्न-भिन सुंदर सुन्दर मूर्तियाँ बनाकर लाते थे । प्रतिवर्ष यहाँ उत्सव मनाया जाता था । लाहा बाबू के द्वारा ही इसका बंदोबस्त

होता था । बाद में यह नष्ट हो गया था । वर्तमान में फिर से एक नया रासमंच तैयार हुआ है और प्रतिवर्ष फिर से उत्सव होता है । कलाकार नाना भाँति की मूर्त्तियाँ बनाते हैं । मेला होता है ।

रामकृष्ण मंदिर के दक्षिण-पश्चिम में सीतानाथ पाईन का घर है । यहीं पर ठाकुर ने सूत बेचने वाली का वेश धारण करके उनके अंतःपुर में प्रवेश किया था और सीतानाथ पाईन के अहंकार को चूर्ण किया था। इस गृह में भी ठाकुर बाल्यकाल में रामायण महाभारत आदि पाठ किया करते थे और अंतःपुर की महिलाएँ उनका गायन सुनने के लिये बेचैन रहती थीं । वे उन्हें इष्ट रूप में भी पूजती थीं । पास में ही पाईन के द्वारा शिव मंदिर का अब खंडहर भाग शेष रह गया है। सीतानाथ पाईन शिवरात्रि के उपलक्ष में नाट्यगायन का बंदोवस्त करते थे । एक बार ठाकुर शिवरात्रि के दिन जटा-जूट धारी शिववेश धारण करके जैसे ही मंच पर आये उन्हें समाधि हो गयी और काफी देर तक वे मूर्छित अर्थात् भावावेश में थे ।

पाठशाला की पूर्व दिशा में पश्चिम द्वारी 'गोपेश्वर शिवमंदिर' है । मंदिर छोटा है पर भीतर लिंग की आकृति के पत्थर के ऊपर गौरी पट्ट शोभित बड़ा सा शिवलिंग है । यह जाग्रत देवता हैं । दक्षिणेश्वर में जब ठाकुर भावावस्था में विभोर होकर पड़े रहते थे तो लोग कहने लगे कि वे उन्मात्त हो गये हैं । माता चन्द्रमणि सुनकर व्याकुल हो उठीं और यहीं पर आकर हत्या देकर पड़ी रहीं तो उन्हें आदेश मिला—'मुकुन्दपुर के शिव के पास जाकर हत्या दो मनकी कामना पूर्ण होगी । इसी की पूर्व दिशा में कामारपुकुर तालाब है । इसी के दक्षिण पश्चिम कोने में धनी कामारिनी का मंदिर और घर है । इस मंदिर का निर्माण हुआ था ५ मार्च १९४५ को । यह आकार में छोटा है और पूर्व और उत्तर की तरफ दरवाजा है । मंदिर में ठाकुर की एक बड़ी प्रतिकृति और उसके ऊपर शिशुगदाधर को गोद में लेकर धनी कामारिनी का तैलचित्र और सबसे ऊपर माँ काली की तस्वीर है । यहाँ काली माँ की नित्य पूजा की जाती है । मंदिर की दीवार पर प्रभु का जन्म वृत्तान्त लिखा हुआ है । धनी माता से ठाकुर ने उपनयन के समय प्रथम भिक्षा-ग्रहण किया था । धनी के नीच कुल की होते हुए भी ठाकुर ने उन्हें माँ का सम्मान दिया था। इसलिये ठाकुर रामकृष्ण को युगप्रवर्त्तक कहते हैं । पास ही में भवतारिणी और गंगाधर शिव मंदिर है ।

हमने रामकृष्ण मंदिर के पूर्व में स्थित चीनू शाखारी का धर देखा । घर का अब सिर्फ स्थान ही रह गया है। बाल गदाधर को सबसे पहले उन्होंने ही अवतार के रूप में पहचाना था और उनकी पुष्प-मिष्टान्न आदि से पूजा की थी ।

इसके और थोड़ी पूर्व दिशा में लाहाबाबू ने जगन्नाथ पुरी जाने वाले यात्रियों के लिये यात्री निवास बनाया था । ठाकुर कितनी ही बार यहाँ आकर साधुओं की सेवा किया करते थे । उनके साथ बैठकर कुछ पाठ किया करते थे और कुछ सीखा करते थे । साधुओं के लिये पानी लाना, लकड़ी ले आना आदि सब करके उनकी सेवा किया करते थे । यह 'पुरातन चट्टी' है । यह अब कार्य में नहीं है । पर पास में ही 'नूतन चट्टी' के नाम से 'यात्री निवास' तैयार हुआ है ।

इसके उत्तर में बुधुई मोड़ल की श्मशान भूमि है, ठाकुर यहाँ पर रात दिन ध्यान किया करते थे ।

अब काफी देर हो चुकी थी । हम थक भी गये थे । अब हम मंदिर लौट चले । वहाँ आरती देखकर रात का भोजन करके अपने निवास स्थान पर विश्राम करने चले आये । दूसरे दिन हम सवेरे ५ बजे मंगल आरती देखने मंदिर में गये । साथ में टार्च और ओडोमास होने के कारण हमें कोई तकलीफ नहीं हुई । हमने थोड़ा ध्यान जप भी किया । ६ बजे हमने नाश्ता किया फिर हम कामारपुकुर के बाकी स्थानों पर गये ।

मंदिर के पश्चिम में जीवनदत्त-तालाब की पश्चिम तरफ भूति का श्मशान है । ठाकुर यहाँ रात को ध्यान किया करते थे । ठाकुर को कभी भूत पिशाच आदि दिखते थे । पर उनके ध्यान में बाधा नहीं आती थी ।

आमोदर नदी के पश्चिम में 'मानिक राजा का आम्रवन' है । यहाँ पर ठाकुर ने अपने सखाओं के साथ कितनी ही बाललीलाएँ की थीं । अब आम्रकानन नहीं है । दो चार आम के पेड़ हैं । हमने उन्हीं को माथा से लगाकर प्रणाम किया । अब यहाँ पर कालेज और 'रामकृष्ण सेवा संघ' का निर्माण हुआ है ।

कामारपुकुर में ठाकुर के जन्मदिवस पर बड़ा उत्सव होता है । १५ दिन का मेला लगता है । मंदिर के दक्षिण पश्चिम में 'मुकुन्दपुर का बूढ़े शिव का मंदिर, है । शिवलिंग एक गड्ढे में स्थापित है, यहीं माता चन्द्रमणि पुत्र कल्याण के लिये हत्या देकर पड़ी थीं । फिर उनको देव आदेश मिला 'डरो मत ! तुम्हारा पुत्र पागल नहीं हुआ है । उसको देव-आवेश हुआ है । ईश्वर के आविर्भाव से उसकी ऐसी अवस्था हुई है ।

अब हमने मिशन की आफिस में जाकर मंदिर के लिये दान किया और ठाकुर को प्रणाम करते हुए हम सवेरे १० बजे जयरामवाटी की ओर निकले । रास्ते में

माँ की महिमा गाते हुए आनंद से ११ बजे तक जयरावाटी पहुँचे। कहते हैं जयरामवाटी की मिट्टी चन्दन के समान है। यहाँ पहुँचते ही मन एकदम शांत हो गया। माँ जयरामवाटी में ५४ वर्ष रहीं। हमें ऐसा लगा कि बस हम सब माँ की गोद में आ गये। सामने गेट है। दोनों तरफ दुकाने हैं। हमारी गाड़ी पिछली गेट से गेस्ट हाउस में पहुँची। उतरकर पहले हम आफिस घर में गये। महाराज से परिचय हुआ। हमने माँ के लिये जो साड़ी और मिठाई लायी थी उन्हें महाराज के हाथों में दिया और फिर मंदिर में गये। मंदिर के स्पर्श से मन आनंद से विभोर हो गया।

इस मंदिर की स्थापना १९२३ के १९ अप्रैल अक्षय तृतीया के दिन स्वामी सारदानन्द की चेष्टा से हुई थी। पहले माँ की तस्वीर की स्थापना की गई थी। १९५४ में माँ की जन्मतिथि के दिन बेलुड़ मठ के अध्यक्ष स्वामी शंकरानंद जी के हाथों से इस संगमरमर की मूर्ति को वाराणसी से यहाँ लाकर उसकी स्थापना की गयी। बहुत चेष्टा करने पर भी मूर्त्तिकार का नाम नहीं जाना गया। इसके कुछ ही दिनों में नाट मंदिर बनवाया गया। माँ की देह की भस्म मंदिर में स्थापित है। माँ की महासमाधि के बाद मंदिर निर्माण करते समय खुदाई के समय एक छोटा सा गौरी पट्ट समेत शिवलिंग प्राप्त हुआ था। उसकी भी यहाँ मातृमंदिर में पूजा की जाती है। मंदिर प्रायः ४५ फीट ऊँचा है। चारों ओर बरामदा है। मंदिर के शीर्षस्थान पर श्वेत रंग की 'माँ' नाम की पताका दूर-दूर के भक्तों को यहाँ खींच लाती है।

माँ की श्वेतवर्ण संगमरमर की मूर्त्ति है जो काले रंग के कमल पर विराजमान है। बेदी के नीचे सामने ठाकुर की प्रतिकृति है। माँ की मूर्ति की नित्य पूजा, भोग, आरती होती है। मंदिर के चारों ओर बरामदा है। पीछे माँ का शयनकक्ष है। वहाँ पर माँ का पदचिह्न, खाट बिस्तर और माँ के द्वारा व्यवहार की गई वस्तुएँ हैं। उसके पीछे भंडार है। साथ में सटा हुआ रसोई घर और फिर आफिस है। बगीचे में इतने सुन्दर फूल खिले हैं कि देखते ही लगता है हम स्वर्गभूमि में आ गये हैं। मंदिर के खुलने का समय ८ बजे से ११ बजे तक फिर शाम को चार से रात के आठ बजे तक है।

मंदिर के सामने तालाब है जिसका नाम पुण्यपुकुर है। यहीं पर माँ और उनके परिवार के लोग स्नान किया करते थे। भक्त गण इस पुण्यपुकुर में स्नान करके तृप्त होते हैं। हम अब मंदिर के बाहर आकर चारों ओर देखने लगे। बगीचे में स्वामीजी की सुन्दर श्वेत जीवन्त मूर्ति हैं।

पहले हम दक्षिण पश्चिम में 'पुरातन घर' में गये। यहाँ माँ ने अपने जीवन के ५२ वर्ष बिताये थे। जगतजननी की इस कुटिया को देखकर मन श्रद्धा से अभिभूत हो गया। माँ के जीवन से सबसे बड़ी सीख है संतोष। हम आधुनिक युग में कितनी भी चीजों से संतुष्टि नहीं होते हैं। यही हमारी अशांति का कारण है। और माँ इस कुटिया में रहकर कितने ही भक्तों का भोजन अपने हाथों से बनाती थीं। भक्तों के जूठे बर्त्तन धोती थीं। कपड़े धोती थीं। साथ ही उन्हें मंत्रदीक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा भी देती थीं। माँ हमारी अनन्या हैं। माँ के माता पिता इसी कुटिया में रहते थे। माँ का जन्म और विवाह यहीं पर हुआ था।

नूतनबाड़ी (नया घर) दक्षिण की तरफ है। यहाँ चार वर्षों तक माँ रहीं। भक्तों की भीड़ दिनों दिन बढ़ने के कारण माँ को असुविधा होने लगी। इसी कारण स्वामी सारदानन्द जी ने मई १९१६ में यह नया मकान बनवाया था। इसमें ४ कमरे हैं। एक में माँ रहती थीं। राधू के साथ! पास में रसोई घर है। और एक घर भक्तों के लिये था, वहीं सारदानन्द जी आकर रहते थे' माँ अपने कमरे में ही ठाकुर की पूजा करती थीं और भक्तों को मंत्रदीक्षा देती थीं।'

मातृमंदिर के दक्षिण में जगद्धात्री माता का पूजामंडप है। माँ ने स्वयं ही यह पूजा शुरू की थी। अपनी माँ श्यामा देवी की प्रेरणा से माँ ने १२ वर्ष तक पूजा करने का निश्चय किया। पर पूजा के अंतिम दिन में रात्रि में माँ को स्वप्न दर्शन हुआ और आज तक यह पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती हैं। तीन दिन पूजा होती है, पहले दिन षोड़श उपचार के बाद के दो दिन साधारण पूजा। जगदधात्री देवी के दोनों ओर जया विजया की मूर्ति स्थापित होती है।

मातृमंदिर के सम्मुख दक्षिण द्वार का प्राचीन देवालय है। इसमें माँ के पितृवंश के कुलदेवता सुन्दरनारायण धर्म-ठाकुरजी का मंदिर है। वहीं पर शीतला माँ और नारायण शिला भी है। अभी तक मुखर्जी वंश के लोग परम्परागत पूजा कर रहे हैं। थोड़ी ही दूर पर भानुपीसी का वास्तुघर है। श्री ठाकुर की कृपाधन्या भानु माँ की बालसंगिनी थी। भानुदेवी माँ और ठाकुर को साक्षात देवदेवी ज्ञान से पूजती थी।

अब हम थक गये थे। और प्रसाद भोग का भी समय हो रहा था। अब हम भोजनकक्ष में गये। यह विशाल कक्ष है। जमीन पर बैठकर भक्तगण प्रसाद ग्रहण करते हैं। पास में टेबिल मेज लगी हुई दो कमरे हैं। एक पुरुषों के लिये और एक महिलाओं के लिये।

हमें वहाँ बुलवाया गया और भक्तिभाव से हमने प्रसाद ग्रहण किया । फिर विश्राम करने अतिथिशाला गये । अतिथिशाला साफ सुथरी थी । रजाई, मच्छड़दानी सभी रखी हुई थी । पानी की सुन्दर व्यवस्था है । हमने शाम के ४ बजे तक विश्राम किया ।

फिर चाय-मुड़ी ग्रहण करके जयरामवाटी घूमने गये । मंदिर से थोड़ी दूर जाकर बायीं तरफ सिंह वाहिनी का मंदिर है । देवी के मंदिर को अब पक्का बनवा दिया गया है । यहीं पर देवी की नित्यपूजा होती है । माँ के पितृवंश के लोग ही पूजा करते हैं । मंदिर में सिंहासन पर सिंहवाहिनी देवी और उनकी दो संगिनियाँ चंडी और महामाया की अष्टधातु निर्मित मूर्ति है और एक तरफ मनसा देवी । माँ को अन्नभोग निषिद्ध है । देवी को चिवड़ा फलमूल और मिठाई चढ़ाते हैं । शरतऋतु में इस मंदिर में तीन दिनों तक उत्सव मनाया जाता है । माँ सारदा एक बार कठिन व्याधि से ग्रस्त हो गई थीं। देवी की हत्या देकर पड़ी थीं । वहीं से दैवी कृपा हुई और औषधि प्राप्त हुई । उन्हीं से फिर देवी की महिमा चारों तरफ फैल गयी । माँ सिंहवाहिनी की मिट्टी अपने पास श्रद्धापूर्वक रखंती थीं और रोज थोड़ा-थोड़ा खाती थीं । और राधू को भी खिलाती थी ।

जयरामवाटी के उत्तर पश्चिम में प्रवाहित हो रही आमोदर नदी माँ को अत्यधिक प्रिय थी । यह माँ के लिये 'गंगा' नदी थी । बचपन में माँ गंगास्नान करने के बाद भाई बहनों के साथ कुरमुरा खाती थी । वर्त्तमान समय में पास ही 'मायेर दीघी' नाम का तालाब है । वहीं से खेतों में सिंचाई होती है । अब जिस घाट पर माँ स्नान करती थीं वहीं पर पक्काघाट का निमार्ण हुआ है ।

जयरामवाटी के दक्षिण कोने में 'तालपुकुर' है । यहाँ माँ प्रायः स्नान के लिए आया करती थीं और इस जलाशय के पानी को पीने के लिये भी उपयोग किया जाता था ।

इस प्रकार इस पूरी यात्रा में मैं एक दिव्य आनन्द धाम में विचरण करती रही । ठाकुर माँ की कृपा की अमृत धारा में नहाकर तृप्त होती रही । मुझे प्रत्यक्ष अनुभव होता रहा कि श्री ठाकुर और श्री माँ सदैव मेरे साथ रहकर अपने कृपा-कटाक्ष से मेरे जीवन को परिपूर्णता, धन्यता और अमरता प्रदान कर रहे हैं । ❑

जिज्ञासुओं के प्रश्न : स्वामी भूतेशानन्द के उत्तर

[रामकृष्ण मठ व मिशन के बारहवें अध्यक्ष ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज की स्मृति में प्रकाशित बंगला पुस्तक 'प्रणामिका' के कुछ अंशों का साभार अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में कार्यरत ब्रह्मचारी परिमुक्त चैतन्य ने विवेक शिखा के लिए किया है । विश्वास है, साधकों की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान हो सकेगा ।–सं०]

प्रश्न : सद्‌गुरु के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर : सद्‌गुरु को कोई आकांक्षा, विषय-कामना नहीं होनी चाहिए । गुरु यदि शिष्य बनाकर उसके साथ कारोबार करते हैं तो यह चलेगा नहीं । गुरु सद्‌गुरु हैं तो उनके सान्निध्य से मन शुद्ध होगा । गुरु जिस पथ पर स्वयं चले हैं, वही पथ शिष्य को बताएँगे । गुरु-निर्दिष्ट पथ पर शिष्य चलता हैं तो पवित्र जीवन व्यतीत कर पाएगा । कोई बी. ए. पास व्यक्ति भी पढ़ा सकता है और एम. ए, एम. एस सी., पी-एच.डी. वाला भी पढ़ा सकता है । अतः सद्‌गुरु सत् होना चाहिए। वे स्वयं जिस पथ पर चले हैं, वही पथ शिष्य को दिखाते हैं ।

प्रश्न : गुरु का संग सर्वदा कैसे किया जाय ?

उत्तर : गुरु का सर्वदा चिंतन करने से ही उनका संग किया जा सकता है ।

प्रश्न : 'महापुरुष का संग करना-इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : संग करना यानी उनके पास बैठे रहना नहीं, उनके भाव को ग्रहण करना और जीवन में उसको प्रतिफलित करना ।

प्रश्न : दीक्षा क्या हैं ?

उत्तर : दीक्षा यानी कोई प्रतिज्ञा, जिसका अनुसरण करने से लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । दीक्षा यानी एक व्रत आरंभ करना, भगवान को जानने की शुरुआत करना ।

प्रश्न : क्या प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक हैं ?

उत्तर : मन ही गुरु है । कुछ लोग दीक्षा आनुष्ठानिक भाव से लेते हैं और कुछ लोग नहीं भी लेते हैं । मन ही मन भगवान का चिंतन करना या किसी महापुरुष का चिंतन करना भी दीक्षा है, किंवा कोई महापुरुष यदि किसी की मंगलकामना करते हैं, तो वह भी दीक्षा है ।

प्रश्न : जिन लोगों ने दीक्षा नहीं ली है, लेकिन ठाकुर के प्रति उन्हें प्रेम है, उनका क्या कुछ भी नहीं होगा ?

उत्तर : हाँ, होगा क्यों नहीं ? शुद्ध मन से ठाकुर का नाम लेने से ही होगा ।

प्रश्न : लेकिन जिन लोगों ने दीक्षा नहीं ली है, उन्हें तो बीजमन्त्र प्राप्त नहीं हुआ है, तो फिर वे किस प्रकार पुकारेंगे ?

उत्तर : ठाकुर को पुकारने से ही होगा । फिर भी दीक्षा लेने से यह सुविधा होती है कि बड़े-बड़े महापुरुष जिस पथ पर गये हैं, उसी प्रकार की एक परम्परा के साथ युक्त हो सकते हैं । गुरु उसी पथ का निर्देश करते हैं । लेकिन जिन लोगों ने दीक्षा नहीं ली हैं, उनलोगों को स्वयं ही पथ ढूँढ़ना होगा । जिस प्रकार कुछ नया आविष्कार करने के समय अन्धकार में पथ ढूँढना पड़ता है, उसी प्रकार ।

प्रश्न : ठाकुर जो आपलोगों के माध्यम से मन्त्र दीक्षा देकर इतनी कृपा कर रहे हैं, लेकिन जो लोग मन्त्र पाकर भी कुछ भी नहीं करते हैं, उन लोगों का क्या होगा ?

उत्तर : कुछ भी नहीं होगा । मान लीजिए आपको खर्च करने के लिए एक हजार रुपये दिये गये, लेकिन आपके द्वारा उसको खर्च न करके एक बक्से में बंद करके रख देने से क्या होगा ? फिर भी एक सुविधा होती है कि आपकी इच्छा होने पर उसे बक्से में से निकाल कर उसका उपयोग कर सकते हैं ।

प्रश्न : यदि कोई दीक्षा न लेकर केवल एक नाम का आश्रय लेकर रहे तो क्या उससे होगा नहीं ? जैसे 'रामकृष्ण' का नाम ।

उत्तर : होगा । यदि खूब आन्तरिकता के साथ नामस्मरण करे, तो होगा । तब मन ही गुरु हो जाता है । परन्तु ऐसा होना सहज नहीं है, इसी कारण से साधारण लोग गुरु की सहायता से नाम लेते हैं ।

प्रश्न : ध्यान-जप करने के समय अन्य विचार आते हैं । मन एकाग्र नहीं होता है ।

उत्तर : मन में जो सब भरा है, वही उठता है । मन का तो वह जोर है नहीं कि व्यर्थ की चिन्ताओं को दूर करके ठाकुर का चिंतन करे ? इसलिए ऐसा होगा ही ।

प्रश्न : उपाय क्या हैं ?

उत्तर : उपाय, मन से अन्य चिन्ताओं को दूर करके उनका (भगवान का) चिंतन ज्यादा करना होगा। नहीं तो जिस से मन भरा हुआ हैं, वही सब मन में उठेगा ।

प्रश्न : दुःख दूर करने का उपाय क्या है ?

उत्तर : दो उपाय हैं । प्रथम, विचार करना कि एकमात्र ईश्वर ही नित्य हैं और सब अनित्य । तब दुःख का दुःख रूप से बोध नहीं होगा । दूसरा, ईश्वर के प्रति प्रेम जितना बढ़ेगा उतना ही यह सब तुच्छ बोध होगा ।

प्रश्न : मन की उन्नति कैसे करें ?

उत्तर : सर्वदा सत् चिंतन का अभ्यास करते-करते मन की उन्नति होगी ।

प्रश्न : कार्य में उत्साह कैसे प्राप्त करूँ ?

उत्तर : कार्य में उत्साह रखना होगा और एकाग्रता रखनी होगी ।

प्रश्न : भगवान का चिंतन करने से उनके प्रति प्रेम बढ़ता है । हम लोग थोड़ा-थोड़ा चिंतन तो करते हैं किन्तु प्रेम क्यों नहीं कर पाते हैं ?

उत्तर : थोड़ा-थोड़ा प्रेम निश्चिय ही करते हो, नहीं तो यहाँ क्यों आते हो ? प्रेम थोड़ा-थोड़ा करके बढ़ता जाएगा । प्रेम करते-करते प्रेम बढ़ता है ।

प्रश्न : आप ने कहा था कि, यहाँ आने से जो आनन्द मिलता है और सिनेमा देखने से जो आनन्द मिलता है उसमें फर्क हैं । सिनेमा देखने के आनन्द में केवल आनन्द ही लक्ष्य है, और यहाँ आने का लक्ष्य हैं भगवान, क्या यही फर्क हैं---?

उत्तर : यही तो फर्क है । जो भक्त कुछ नहीं चाहता है, उसकी भक्ति में कोई कामना-वासना नहीं है, उसे कोई बाहरी आनंद भी नहीं चाहिए । वह केवल भगवान को प्रेम करना चाहता है क्योंकि भगवान ऐसी वस्तु हैं, जिसको प्रेम किये बिना रहा नहीं जा सकता ।

प्रश्न : आप आशीर्वाद दीजिए जिससे हम सब लोगों की खूब उन्नति हो ।

उत्तर : होगा, प्रयत्न करते-करते होगा । यहाँ हररोज जो आ रहे हो, निश्चिय ही कोई एक आकर्षण है, इसलिए आ रहे हो । यह कुछ तो हुआ है न---। फिर भी और ज्यादा करना होगा ।

प्रश्न : श्री श्री माँ ने कहा है कि शुद्ध चिंतन करने से मन की मलिनता दूर हो जाती है । मन की मलिनता दूर हुई है, यह कैसे समझ पाएँगे--- ?

उत्तर : स्वयं के मन की ओर देखना । मन तुम्हारा है, तुमहीं ठीक समझ पाओगे कि मलिनता दूर हो रही है कि नहीं । तुम्हें भूख लगने से तुम कैसे समझ पाते हो ? इसी तरह मन में जब शुद्ध चिंतन आएगा, तब समझ पाओगे कि मलिनता दूर हुई; और जब अशुद्ध चिंतन आएगा तब समझना कि मलिनता है ।

प्रश्न : एक बात है–'जो करेगा मेरी आश उसका करूँगा सर्वनाश, भगवान की साधना का पथ क्या सर्वदा दुःखमय है ? दुःख के भीतर से ही क्या उनकी ओर जाना होगा ?

उत्तर : हाँ, दुःख के सिवाय उनके पास पहुँचा नहीं जा सकता । आनंद उनको देकर, दुःख को स्वयं अपने पास रखने से ही उनको प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रश्न : ईश्वर तो आनन्दमय हैं । फिर भी जगत् में इतना दुःख, ध्वंस, भूकम्प, बाढ़ ये सब क्यों---? वे तो मंगल करते हैं ।

उत्तर : उनकी लीला कौन समझ पाएगा---? वे किससे मंगल करते हैं यह समझने की क्षमता हमारे पास कहाँ है----? यह जो दुःख विनाश, ध्वंस हो रहा है, यह सब जो लोग अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं उनके मन में जो वैराग्य उत्पन्न हो रहा है–वे लोग जगत् की अनित्यता को समझ रहे हैं । ये क्या मंगल नहीं हो रहा है--।

प्रश्न : आपने कहा था कि सरल होने के लिए संस्कार और अभ्यास चाहिए । अभ्यास कैसे होगा ?

उत्तर : सरलता का अभ्यास करने के लिए जटिलता और कुटिलता का त्याग करना होगा ।

प्रश्न : हम लोग जागतिक क्षेत्र में कोई दुःख पाने से दुःख का बोध करते हैं । लेकिन भगवान की प्राप्ति नहीं होने से क्यों इस तरह के दुःख का बोध नहीं होता हैं---?

उत्तर : मन में मलिनता होने से ही बोध नहीं होता है । ❑

प्रश्न यह है कि गुरु की पहचान हमें कैसे हो ? सूर्य को दिखाने के लिए मशाल या दीपक की आवश्यकता नहीं होती । सूर्य को देखने के लिए हम मोमबत्ती नहीं जलाते । सूर्य का उदय होते ही उसके उदित होने का ज्ञान हमें स्वभावतः ही हो जाता है । उसी प्रकार जब हमें सहायता देने के लिए किसी जगद्गुरु का आगमन होता है, तब आत्मा को अपने स्वभाव से ही ऐसा लगने लगता है कि उसे सत्य की प्राप्ति हो गयी । सत्य स्वयं सिद्ध होता है । वह हमारी प्रकृति की अन्तरतम गुहाओं तक को भेद देता है और समस्त विश्व उठ खड़ा होता है और कहता है, 'यही सत्य है ।' महान् आचार्य ऐसे ही होते हैं ।

—स्वामी विवेकानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा में आध्यात्मिक शिविर

–डॉ० केदारनाथ लाभ

छपरा : ६ जून, आज माँ सारदा देवी की १५०वीं जयंती के उपलक्ष्य में स्थानीय रामकृष्ण मिशन आश्रम में एक दिवसीय आध्यात्मिक शिविर का एक धार्मिक परिवेश में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आयोजन किया गया। आश्रम परिसर में एक बड़ा पण्डाल खड़ा किया गया था। मंच पर श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द के भव्य चित्र पुष्पाभरणों से सजाकर प्रतिष्ठित किये गये थे। अगरबत्तियों की सौम्य सुगन्ध से पूरा परिवेश पवित्र हो गया था। मंच पर स्वामी रघुनाथानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, मुजफ्फरपुर, स्वामी विमोक्षानन्द, सचिव रामकृष्ण टी०बी० सेनेटोरियम, राँची, स्वामी तद्‌गतानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना तथा छपरा आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द की उपस्थिति एक आध्यात्मिक आलोक का वितान बुन रही थी। लगता था मंच पर एक दुर्लभ देव मंडली विराज रही है।

प्रातः ८.३० स्वामी अजपानन्द, ब्र० परिमुक्त चैतन्य तथा ब्र० शुभ्रांशु महाराज के द्वारा आरोह-अवरोह के साथ वैदिक मंत्रों के उच्चारण द्वारा शान्ति-पाठ शुरू होते ही भक्तों के हृदय में एक दिव्यता का प्रवेश होने लगा। भक्त–नर-नारी सहज ही आत्मोन्मुखी होने लगे। तदुपरान्त स्वामी रघुनाथानन्द एवं अन्य साधुओं ने एक एक कर त्रिदेवों के समक्ष दीप प्रज्वलित किये। दीप-शिखा के आलोक-लोक से मंच पर आध्यात्मिकता जीवन्त हो उठी और भक्तों के हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द का आलोक उतर आया।

अब उठे आगत-स्वागत के लिए आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्दजी महाराज उन्होंने अपने स्वागत भाषण में कहा कि मानवजीवन भोग नहीं, योग के लिए, वासना नहीं उपासना के लिए, भय नहीं अभय में स्थित रहने के लिए बना है। यह मानव शरीर साधन-धाम और मोक्ष का द्वार है। हमारे जीवन का उद्देश्य ईश्वर-लाभ करना है और हमें इसी जीवन में आत्म-साक्षात्कार कर मुक्त हो जाना है। उन्होंने आगे कहा कि गृहस्थों को सांसारिकता में लिप्त रहने के कारण हीन-भाव से ग्रस्त होने की जरूरत नहीं है बल्कि प्राप्त परिस्थिति में ही सांसारिक दायित्वों का पालन करते हुए सदैव अपने मन को परमात्मा की और, आनन्दधन भगवान की ओर लगाये रखना है। तभी हम सुख, शान्ति और आनन्द से जीवन-यापन करते हुए परमात्मा के दिव्य पथ की ओर अग्रसर हो सकेंगे। उन्होंने सभी साधु-ब्रह्मचारियों के साथ आगत अतिथियों एवं श्रद्धालु भक्तों का स्वागत किया।

धीरे-धीरे पंडाल भक्तों से भर उठा। पटना, मुजफ्फरपुर दरभंगा और सीवान के भक्त नर-नारी भी बड़ी संख्या में पंडाल में समासीन थे।

ब्रह्मचारी परिमुक्त चैतन्य शिविर का संचालन कर रहे थे। उन्होंने स्वामी तद्‌गतानन्दजी महाराज को भजन गान के लिए सादर अनुरोध किया। उनके भजन से श्रोता भाव-विभोर होने लगे।

और तब हुआ चाय-विराम। फिर स्वामी रघुनानानन्दजी का आरंभ हुआ 'श्रीरामकृष्ण : जीवन और संदेश' विषय पर व्याख्यान। उन्होंने कहा कि श्रीरामकृष्ण को अवतार वरिष्ठ कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य अवतार अपने में तो पूर्ण हैं ही, परन्तु श्रीरामकृष्ण में आध्यात्मिकता का परम उन्मेष हुआ था। इसी से वे कहते थे, जो राम हैं, जो कृष्ण है, वही इस शरीर में रामकृष्ण हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान बुद्ध प्रभु ईशा सभी अपने-अपने काल के महा अवतार थे परन्तु वर्तमान युग में हमारी रुचि, हमारी समस्याओं और परिस्थितियों में श्रीरामकृष्ण सर्वाधिक उपयोगी हैं। वैष्णव चरण ने कहा था कि जो श्रीरामकृष्ण का चिन्तन-मनन करेगा, वह अपना आत्म-विकास करेगा। भैरवी ब्राह्मणी, केशव सेन आदि सबने उनकी महिमा गायी। वे भिन्न-भिन्न रुचि के लोगों के लिए अपने विभिन्न लीला-पार्षदों के साथ हमारे बीच आये। ठाकुर ने सभी धर्मों की साधना कर उनकी सत्यता का अपरोक्ष अनुभव किया। फिर सर्वधर्म समभाव की शिक्षा दी। आज सभी धर्मों में, ईसाइयों में भी ठाकुर के भाव का समावेश हो रहा है, उनमें धार्मिक उदारता आ रही हैं। रामकृष्ण की महत्ता को कोई रामकृष्ण ही पहचान सकता है। वे वस्तुतः कल्पतरू हैं। फिर हुआ सामूहिक जप-ध्यान और गीता-पाठ।

और अंत में स्वामी विमोक्षानन्द ने माँ सारदा के जीवन और संदेश पर व्यापक रूप से प्रकाश डालते हुए कहा कि माँ परम करुणामयी हैं। बाह्यजीवन में वे परम सीधी सादी हैं पर उनका आंतरिक जीवन आध्यात्मिक पूर्णता से भरा है। वे एक ओर प्राणप्रण से श्री श्री ठाकुर की सेवा करती हैं, उनकी वाणी को ध्यान से सुनती हैं, उनके उपदेशों को जीवन में आचरित करती हैं दूसरी ओर वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति को गोपित रखती हैं। राधू जैसी पगली लड़की को अपनाकर वे दिखाती हैं

कि संसार में कितना भार संभालना पड़ता है। लेकिन दैनिक जीवन के दायित्वों का पूरी निष्ठा से निर्वहन करते हुए भी परमात्मा के पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। वे ठाकुर के भिन्न रुचियों वाले शिष्यों के लिए रुचि अनुसार भोजन बनाती हैं, छोटे से कमरे में रहती हैं, जीवन में कोई बाह्य प्रदर्शन नहीं है मगर वे अध्यात्म की ज्योति-पुंज हैं। ठाकुर का जीवन धर्म का सूत्र है, स्वामीजी उस सूत्र के भाष्य हैं और श्री माँ उस सूत्र के जीवन में रूपायन होने पर जीवन कैसा हो जाता है उसका उदाहरण हैं। तभी तो ठाकुर उनके चरणों की मातृ भाव से पूजा कर उन्हें भागवती प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं और भोग-विलास के पंक में बिलबिलाते हुए नर-नारियों के त्राण का दायित्व सौंपते हैं। और श्री माँ ने उसका निर्वाह किया।

भाषा सरल, शैली बातचीत की, भाव व्यापक विस्तृत। श्रोताओं को लग रहा था मानो वे व्याख्यान नहीं, धर्म जीवन का स्वर्गीय संगीत सुन रहे हों।

स्वामी तद्गतानन्द के पुन: भजन और ब्र० परिमुक्त चतैन्य के धन्यवाद ज्ञापन से शिविर का प्रथम सत्र आध्यात्मिकता की पद्म-गंध विखेरता हुआ पुष्पांजलि के साथ समाप्त होता है।

शिविर में भाग लेने आये प्राय: ३०० नर-नारियों ने बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। परितृप्त हुए और विश्राम में गये।

द्वितीय सत्र शुरू हुआ ५ बजे। यह सत्र था भजन संध्या का। स्वामी तद्गतानन्द ने भजन गाना शुरू किया। गंधर्व स्वर में भक्ति-भावना के गीत वायुमंडल में गूँजने लगे–दु:ख के दिन अब बीतत नाहीं। भजन बिना दिन बीत गयोरे। हे गोविन्द राखु शरण अब तो जीवन हारे। गोविन्द जय जय गोपाल जय जय, राधारमण हरि गोपाल जय जय। एक पर एक भजन आविराम गूंजता रहा। महाराज के स्वर को उनके ही द्वारा बजाये जा रहे हारमोनियम का स्वर सांगीतिक माधुर्य बिखेरता रहा। डॉ० मेजर मधुकर तबले पर संगत कर रहे थे। और दिशायें एक विचित्र आनन्द-लहरी में झूम रही थीं। श्रोतागण एक विलक्षण स्वर-अमृत की रस फुहार में भींग रहे थे। लग रहा था हम एक ऐसे तपोवन में बैठे हैं जहाँ तप के ताप को भजनांजलि की शीतल मंद बयार दूर कर रही हो। और अंत में हुआ–रामकृष्ण शरणम्, रामकृष्ण शरणम्, रामकृष्ण शरणम् शरण्ये। स्वर में ऐसी मादकता, ऐसी मधुरिमा कि श्रोता तालियों की थाप दे देकर झूमने लगे।

मंदिर में संध्यारती हुई। प्रार्थना भवन ठसाठस भरा हुआ। ब्र० सोमनाथ ने पंचप्रदीप घुमाना शुरू किया। लादू महाराज के साथ हमारे त्रिदेवों के चित्रों से आनन्द की ज्योति फूटती दिखाई पड़ने लगी। शंख से जल-प्रदान किया गया। पुष्पार्पण हुआ। चंवर डुलाया जाने लगा ओर भक्त भावस्थ होते रहे।

आरती के पश्चात् स्वामी विमोक्षानन्द ने ''दैनन्दिन जीवन में आध्यात्मिकता'' विषय पर बड़ा ही सारगर्भित, प्रेरक एवं हृदयावर्जक व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा– छोटा बच्चा आत्म केन्द्रित होता है। वह मैं और मेरा के वृत्त में घिरा रहता है। कुछ बड़ा होने पर वह माँ-बाप आदि स्वजन के वृत्त में आ जाता है युवक होने पर वह जन-समाज के वृत्त में आ जाता है। वहाँ भी संकीर्णता होने पर वह हत्या, दुराचार में फँस जाता है। शरीर बल और मनोबल, बुद्धिबल का दुरुपयोग करता है। फिर आत्मबल आता है आत्म बल के बिना हम में और पशु में अन्तर नहीं है। गाय झूठ नहीं बोलती। दीवार हत्या नहीं करती। परन्तु इससे वे साधु नहीं हो जाती। उनके पास विकल्प नहीं है। ठाकुर स्वामीजी बड़े आधार हैं। उन्हें जीवन में उतारना कठिन है। पर माँ हमारे दैनिक जीवन के लिए आधार हैं। वे मैं-मेरा से निकलकर स्वजन में आयी और फिर परजन के वृत्त में आकर कलकत्ते के लोगों की भलाई में लग गयीं। भलाई के पीछे भी आत्मा का भाव रहना चाहिए। तभी हमारा दैनिक जीवन आध्यात्मिकता से दीप्त हो उठेगा।

डॉ० केदारनाथ लाभ के धन्यवाद ज्ञापन से इस सत्र का समापन हो गया। इस प्रकार यह आध्यात्मिक शिविर भक्तों के मन में आध्यात्मिकता की एक अमल लौ जलाकर विमल विवेक और अचल भक्ति की छाप छोड़ गया। एक लम्बे अन्तराल के बाद आश्रम में आयोजित इस आध्यात्मिक शिविर के आयोजन के लिए भक्तों ने आश्रम के सचिव स्वामी मुनीश्वरानन्द जी मुक्त कंठ से की सराहना की। ❑

रामकृष्ण आश्रम, मैसूर में माँ सारदा-दर्शन-विषयक चित्र-प्रदर्शनी का उद्‌घाटन

रामकृष्ण आश्रम, मैसूर के प्रांगण में विगत ९ मई, २००४ को श्री माँ सारदा देवी की १५०वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन पर आधारित एक भव्य चित्र-प्रदर्शनी का उद्‌घाटन कर्नाटक राज्य के राज्यपाल श्री टी. एन. चतुर्वेदी ने किया। इस अवसर पर महामहिम राज्यपाल जी ने कहा कि माँ सारदा देवी का जीवन श्री रामकृष्णदेव के आदर्शों का एक जीवन्त एवं ज्वलन्त उदाहरण है।

माँ ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा जगत् में शांति एवं पवित्रता का प्रकाश फैलाया। उन्होंने अपने ही ढंग से जीवन की असमानताओं को समत्व में बाँधा था। इस अवसर पर राज्यपालजी ने श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी की पुस्तक 'Enlightened Citizenship' की कन्नड़ भाषा में अनूदित पुस्तक 'आदर्श नागरिक' का भी विमोचन किया।

मैसूर आश्रम के पूर्व अध्यक्ष स्वामी सुरेशानन्दजी ने समारोह की अध्यक्षता की। उन्होंने श्री रामकृष्ण, माँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द की पावन त्रिवेणी में माँ सारदा के योगदान को 'गुप्तगामिनी' के समान अर्थात् शांत एवं प्रभावशाली बताया।

वी. वी. एन. डिग्री कॉलेज में कन्नड़ के प्राध्यापक डॉ ए. एन. मुरलीधर ने कहा कि संसार को अपना बनाने का श्री माँ का सन्देश उनके द्वारा जिये गये जीवन से उपजा था। माँ के लिए कोई पराया नहीं था। अच्छे बुरे सभी माँ की संतान थे।

रामकृष्ण आश्रम, मैसूर के अध्यक्ष स्वामी आत्मविदानन्दजी महाराज ने स्वागत प्रवचन दिया और प्रदर्शनी के बारे में लोगों को जानकारी दी। उन्होंने अपने स्वागत भाषण में लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा कि श्री माँ सारदा देवी की १५०वीं जन्मजयन्ती श्रीरामकृष्ण के भक्तों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि एक छोटे से गाँव जयरामबाटी में जन्मीं सारदा जो आधुनिक शिक्षा से पूर्णतः वंचित थीं और जिनका जीवन मात्र छः वर्ष की आयु में वैवाहिक जीवन में परिणत हो गया, वे आज सम्पूर्ण विश्व के अगणित लोगों द्वारा माँ के रूप में पूजी जा रही हैं। उन्होंने अपने पवित्र एवं सरलतापूर्ण व्यवहार से लोगों को शिक्षा दी कि आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के लिए हमें किसी बाहरी गुण की कोई आवश्यकता नहीं, बल्कि आवश्यकता है केवल सरलतापूर्ण जीवन एवं एक-दूसरे के प्रति प्रेमभावना की।

स्वामी आत्मविदानन्दजी ने कहा कि श्री माँ के आशीर्वाद से ही इस प्रदर्शनी को आज हम पूर्ण कर पाए हैं। हमने इस प्रदर्शनी की ८० किट १० विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित की है। इस प्रदर्शनी को भारत के बाहर यू. एस. ए., आस्ट्रेलिया जैसे विभिन्न देशों में भी भेजा गया है। अभी भी कुछ किट बच गये हैं। इन्हें अब भी कोई व्यक्ति का संगठन खरीद सकता है।

कार्यक्रम की समाप्ति पर उन्होंने विभिन्न संन्यासियों एवं इस प्रदर्शनी से जुड़े सभी लोगों का धन्यवाद ज्ञापन किया।

❑

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेना' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६''×१८'-६''
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६''×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

प्रभु की सेवा में,
(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा रामकृष्ण मठ, नागपुर के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०–जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

डाक पंजीयित संख्या – सी.एच.पी. १४-८३
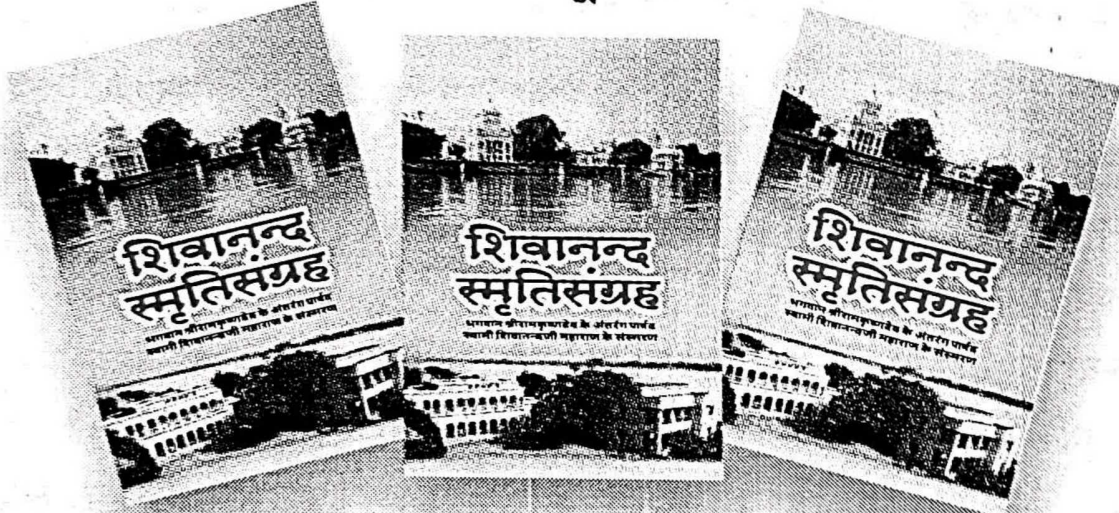
डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।

मुद्रक : वृषाली ऑफसेट, नागपुर-१८